आदिनिवासी भील

प्रकाशकीय निवेदन

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय लोक सभा द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। परन्तु उसके विकास, विस्तार एवं समृद्धि के लिये जितना क्रियात्मक कार्य किया जाना चाहिये; उतना नहीं किया जा रहा है। इसलिये इस ओर केन्द्रीय सरकार को अधिक गतिशील बनना चाहिये। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के साथ २ हिन्दी का काम करने वाली संस्थाओं का भी कर्तव्य है कि वे अपने उत्तरदायित्व की गंभीरता को अनुभव करें और अपने सीमित साधनों के द्वारा भी इसे सम्पन्न बनाने में रचनात्मक योग दें। विधान के अनुसार १५ वर्षों में हिन्दी को सम्पूर्ण रूप से अंग्रेजी का स्थान लेना है तो समस्त हिन्दी-प्रेमियों, हिन्दी हितैषियों और हिन्दी भाषियों को सक्रिय रूप से इसके विकास-कार्य में लग ही जाना चाहिये। राजस्थान विश्व विद्यापीठ विगत एक युग से हिन्दी की समृद्धि के लिये अपने 'साहित्य-संस्थान' द्वारा प्राचीन साहित्य, लोक साहित्य, पुरातत्व, कला एव इतिहास विषयक शोध-खोज, संग्रह-सम्पादन एवं प्रकाशन का नम्र किन्तु महत्वपूर्ण काम करती आ रही है।

"साहित्य-संस्थान' राजस्थान विश्व विद्यापीठ द्वारा गवेषणा के साथ-साथ लोक साहित्य के संग्रह-सम्पादन का कार्य भी योजना बद्ध रूप से किया जा रहा है। राजस्थानी भाषा में गंभीर साहित्यिक सामग्री के अतिरिक्त लोक-साहित्य की प्रचुर सामग्री है। 'साहित्य-संस्थान' में अब तक सैकड़ों लोक-गीत, लोकवार्ता, लोकोक्तियाँ, कहावतें एवं लोक कथायें संकलित की जा चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी संग्रह का परिणाम है। राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों में बसे हुए भीलों का अपना इतिहास एवं अपनी संस्कृति है। भील-जाति का साहस और शौर्य न केवल राजस्थान में ही प्रसिद्ध है अपितु समस्त भारत में इस जाति की ख्याति है। भील-जाति शताब्दियों से दुःखी और अर्द्धनग्न अवस्था में रहती आ रही है परन्तु अब तक इसके विकास एवं प्रगति की अवहेलना ही की जाती रही है। स्वाधीनता के बाद देश के जीवन में प्रगति का जो दौर शुरू हुआ है उसमें पिछड़ी हुई जातियों के विकास एवं उत्थान कार्य को प्रमुखता दी गई है। ऐसी जातियाँ देश के कोने कोने में बिखरी हुई मिलती हैं जिनकी अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषतायें हैं राजस्थान के एक बड़े भाग में यह भील जाति बसी हुई है। रात-दिन परिश्रम कर अपना जीवन निर्वाह करती है। राजस्थान की इस जाति के सम्बन्ध में अभी तक किसी ने दिलचस्पी लेकर कोई व्यवस्थित जानकारी पुस्तक रूप में नहीं दी। उक्त पुस्तक 'आदि निवासी भील' भीलों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन की परिचायक है।

यह पुस्तक प्रकाशन के लिये कई वर्षों से पड़ी हुई थी परन्तु साधन सुविधाओं के न होने से आज से पूर्व पाठकों के हाथ में नहीं दी जा सकी। अभी तक भी इसका प्रकाशन शायद ही हो पाता यदि राजस्थान सरकार के पिछड़ी जाति विभाग के संचालकों, पदाधिकारियों और माननीय मंत्री श्री पंड्याजी का सक्रिय सहयोग नहीं मिलता। सरकार के पिछड़ी जाति विभाग ने उक्त पुस्तक तथा इसके साथ दो और पुस्तकों के लिये एव भीली शब्द संग्रह, जो कहावत माला के साथ प्रकाशित है २०००) दो हजार रुपैयों की आर्थिक सहायता प्रकाशन हेतु देने की कृपा की; इसके लिये संस्थान की ओर से मैं उन का अत्यन्त आभारी हूँ। विभाग की ओर से इसी प्रकार का सहयोग भविष्य में भी निरन्तर मिलता रहा तो 'साहित्य-संस्थान' भीलों सम्बन्धी और अन्य पिछड़ी हुई जातियों सम्बन्धी साहित्य शीघ्र ही और भी प्रकाशित कर सकेगा।

सरकार की इस सहायता को प्राप्त करने में राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठ मंत्री श्री भगवतीलाल भट्ट ने जिस तत्परता और लगन का परिचय दिया, उसके लिये वे निस्सन्देह धन्यवाद के पात्र हैं। यदि वे समय पर सावधान न होते तो यह सहायता कदाचित् ही मिल पाती।

इस पुस्तक को तय्यार करने में श्री जोधसिंहजी मेहता ने काफी परिश्रम किया है। राजस्थान के भील-जीवन से सम्बन्धित

सारी जानकारी इस से हो जायगी। यों राजस्थान के भीलों के सम्बन्ध में प्रकाशित यह प्रथम पुस्तक है इसलिये अधिक उपादेय सिद्ध होगी- इसमें कोई शक नहीं है।

—गिरिधारीलाल शर्मा

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ,

उदयपुर

विजियादशमी

दो हजार दस

७।१०।५४

भूमिका

आदिम जातियों की संख्या इस देश में ढाई करोड़ मानी गई है जो कुल जन-संख्या का चौदहवाँ भाग है। गोंद, संथाल, भील, कॉवी, उड़ाओं, वनजार, मुंडा, शवर, हो, नाग, कचारी भारत की मुख्य आदिम जातियाँ हैं। इनकी बस्ती आसाम, बिहार, उड़ीसा, राजपूताना, मध्यभारत, मध्यप्रदेश और बम्बई प्रान्त में पाई जाती है। संख्या के प्रमाण में सबसे पहले गोंड उसके बाद संथाल और तीसरे नम्बर में भील आते हैं। ये जातियाँ जगलों और पहाड़ों में रहती हैं जहाँ जानवर और भूत प्रेतादि अदृश्य शक्तियों के भय से इनका जीवन कलुषित एवं विस्मय पूर्णबन गया है। शराब खोरी, लूटमार और कर्जदारी से ये जातियाँ दबी हुई हैं। साधारण खेती और मजदूरी से अपना निर्वाह कर लेती हैं, किन्तु न तो भर पेट भोजन मिलता है और न शरीर को ढकने के लिये पूरे वस्त्र। अज्ञानता का गहरा पर्दा पड़ा हुआ है। इन परिस्थितियों के कारण, ये जातियाँ सदियों से विपद्ग्रस्त रहती आई हैं और सभ्यता में पिछड़ी हुई हैं। इनके जीवन में जो थोड़ा सुख का संचार दिखाई देता है, वह प्रकृति के सम्पर्क से है। यदि प्रकृति का साथ नहीं होता तो ये जातियाँ कभी की रसातल को पहुँच जाती।

आज रूस, यूनान, मिस्र, रोम आदि अनेक देशों का इतिहास पढ़ते हैं लेकिन हम हमारे पास में रहने वाली मूल जातियों के बारे में जानने की इच्छा नहीं करते। जंगली जातियों को देख कर हम इनसे परहेज करते हैं, मैले-कुचैले देख कर नफरत करते हैं और इनकी गरीब हालत के कारण इनको ठुकराते हैं। यदि ध्यान पूर्वक इन जातियों का अध्ययन किया जाए तो मनुष्य जाति के नये-नये हाल और विचित्र-विचित्र ढंग मालूम होंगे, प्रकृति और मनुष्य-समाज के चिरकालीन सम्बन्ध के परिणाम प्रकट होंगे और अपूर्व-इतिहास तथा अनोखे रस्म-रिवाज का एक नया भंडार खुल जायगा। आदि-सभ्यता की रूप रेखा आज भी इन आदिम-जातियों के अस्तित्व में विद्यमान है, सिर्फ अन्वेषण की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को देख कर, मैंने भील-जाति पर कुछ अध्ययन किया है।

कुल भीलों की संख्या हिन्दुस्तान में २०, १२, १७७ सन् १९३१ ईस्वी में शुमार हुई थी। इसके बाद संख्या बढ़ती जा रही है। अब २२॥ लाख इनकी जन संख्या मानी जाती है। बम्बई, मध्य-प्रान्त, बड़ौदा और राजपूताना में इनकी घनी-आबादी है। इस जाति का इतिहास प्राचीन और ओजस्वी रहा है। रामायण और महा-भारत में भी भीलों का वर्णन मिलता है। गुजरात, मालवा और मध्य-हिन्द में पहले इनके राज्य स्थापित रहे थे। राजपूताना के कुछ एक राज्य भीलों के सहयोग और सहायता से स्थापित हुए हैं। डूँगर-पुर, बांसवाड़ा और कोटा भीलों के नाम से पुकारे जाते हैं। मेवाड़ राज्य-चिन्ह पर चित्तौड़ दुर्ग के एक ओर भील तीर-कमान लिये हुए और दूसरी ओर राजपूत तलवार खड़े हुए अंकित हैं। राजपूताने में जहाँ भीलों की आबादी बहुत है वहाँ पर पहले राज्य-तिलक अक्सर भील ही किया करते थे। राजपूत राजाओं के

साथ भीलों का नाम इतिहास में उज्ज्वल और अमर हो गया है। इसका कारण यह है कि भील जाति ने पहले के ज़माने में अपूर्व-वीरता और स्वामि-भक्ति दिखलाई थी। आज भी इस जाति में ये गुण मिलते हैं। वनों और पहाड़ों में बहादुरी का काम पड़ने पर भील पीछे नहीं हटते। एक बार जिस मनुष्य का विश्वास कर लिया या जिस घर का नमक खा लिया, फिर उस मनुष्य या उस घराने के सर्वत्र कृतज्ञ बने रहते हैं, यही नहीं, संकट के समय में अपने प्राण भी देने को तैयार रहते हैं। कपट-पन इस जाति ने सीखा ही नहीं। ऐक्य और सामूहिक भाव भीलों में विशेष पाया जाता है। जहाँ भीलों के पास यदि खाने को एक रोटी भी हुई तो आपस में बाँट कर खायेंगे। 'पाल' (गाँव) के 'गमेती' (मुखिया) की आज्ञा,को विना बहस किये हुए मानते हैं। जहाँ तक देखा गया है भील अपने सरदार की बात को कभी नहीं टालते हैं। सारी 'पाल' 'गमेती' के इशारे पर चलती है। इतने अच्छे गुण होते हुए भी इन में शराब पीने की और चोरी करने की बुरी आदत है जो धीरे-धीरे अब कम होती जा-रही है।

इनके रस्म रिवाज बड़े अनोखे और कौतुहल–मय हैं। हर एक रीति-रिवाज के साथ सुरापान और नृत्यु अनिवार्य है। जन्म से लेकर मृत्य तक जितने संस्कार होते हैं उनमें 'हरा' (शराब) और 'ठेकना' (नृत्य) बराबर होता है। जन्म होने के समय अपनी जाति के लोगों को बुला कर खुशी मनाते है, उनको शराब पिलाते हैं और ढोल बाजित्र के साथ नाचते–कूदते हैं। सगाई और शादी में भी यही रिवाज है। मृत्यु–संस्कार में शराब इस्तेमाल करते हैं। जितनी आदिम जातियाँ हैं वे नाच–कूद और गान करके अपना आमोद प्रमोद करती हैं। उडा श्रो जाति में ऐसा माना जाता है कि वही मनुष्य देवताओं को अधिक सन्तुष्ट रखता है जो अधिक 'हुलास' करता है। भील भी देवताओं के

सामने महुवा की मदिरा में मस्त होकर मस्ती के साथ नाचते हैं। 'गवरी' और 'घेर' इनके मुख्य नाच हैं। नाच के साथ गान भी होता है। यद्यपि भीलों के गीतों में ताल-बन्दी और तुक-बन्दी के सिवाय और कुछ नहीं है तथापि उनमें वीरता के आख्यान और प्रेम की मधुर-भावनाओं का भण्डार भरा हुआ है। यदि इनके गीतों का संग्रह किया जाए तो एक बड़ी रोचक पुस्तक लिखी जा सकती है।

भीलों का विवाह एक लौकिक खेल है जो बिना 'दापा' (Brides price) के पूरा नहीं समझा जाता। विवाह होने के बाद यदि स्त्री किसी दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध करले तो उसका पति हर्जाना पा सकता है जिसको 'झगड़ा' कहते हैं। पुरुष को तलाक देने का अधिकार है जिसको भीली भाषा में 'छेड़ा फाड़ना' कहते हैं। स्त्रियों को अपने पति को त्याग करने का अधिकार निश्चित हैं। विधवा-विवाह की भीलों में रोक नहीं है। पति के मरने पर यदि विधवा देवर से सम्बन्ध जोड़ना चाहे तो जाति के लोगों के सामने मृत्यु-भोज के अवसर पर देवर पछेवड़ी डालने का दस्तूर अदा करता है। देवर के अलावा दूसरों के साथ भी विधवा सम्बन्ध कर सकती है। भीलों का दाम्पत्य-जीवन सुखी होता है। हर एक सामाजिक और धार्मिक कार्य में भील स्त्री-पुरुष साथ-साथ रहते हैं। पर्दा का रिवाज यद्यपि भीलों में नहीं है तथापि यह देखा गया है कि राजपूताना में अक्सर भील-स्त्रियाँ अपनी साड़ी का पल्ला मुँह के आगे रख कर शर्म करती है। भीलनियाँ मेहनती, विनय-शील और सदाचारिणी होती हैं। हाथों और पैरों में पीतल की चूड़ियाँ और कड़ियाँ पहिनती हैं जिनको "गागरियाँ" और "पिंजणियाँ" कहते हैं। इन आभूषणों की तीखी-आवाज से, भील-स्त्री की दूर से ही पहिचान हो सकती है।

भील सन् १९२१ ईस्वी की जन गणना में भूत-प्रेत-वादी (Animists) माने गये थे। सन् १९३१ ईस्वी में इनमें से ७० फी सदी हिन्दू गिने गये हैं। हिन्दुओं के साथ धार्मिक बातों में इनकी तुलना की जाय तो कोई विशेष अन्तर नहीं मिलेगा। जो देवता और रस्म-रिवाज हिन्दुओं में पाये जाते हैं वे ही प्रायः भीलों में भी मिलते हैं। जब एक भील दूसरे से मिलता है तो उसके मुँह से 'राम राम' शब्द ही निकलता है। महादेव, हनुमान, ऋषभदेव तथा सूर्य, चन्द्रमा और अन्य नक्षत्रादि को मानते हैं और पूजा करते हैं। होली, दीवाली, दशहरा आदि पर्व और त्योहारों को बड़े आनन्द से मनाते हैं। 'भगत' साधु इनको ईश्वर-भजन सुनाते हैं। पुराने-ज़माने में भील जादूगरनियों को बहुत सताया करते थे लेकिन अब ऐसा नहीं होता। 'डाकिन' शब्द अपमान सूचक समझा जाता है और अक्सर ऐसे शब्द कहने पर झगड़ा-फिसाद हो जाते हैं, बल्कि कचहरियों में नालिश भी कर देते हैं। तलवार पर अफ़ीम रख कर व कालाजी (मेवाड़ में मशहूर तीर्थ-स्थान) की केशर पीकर सौगन्ध शपथ करते हैं। यदि जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र, सौगन्द-शपथ और अन्ध-विश्वास से ही इनको भूत-प्रेत-वादी माना जाय तो क्या हिन्दुओं में ये बातें नहीं हैं? सभ्यता में पीछे पड़ जाने से भील भले ही भूत-प्रेत-वादी प्रतीत हों, किन्तु वास्तव में ये हिन्दू-धर्म को मानने और पालने वाले हैं।

इस पुस्तक में भील जाति का आद्योपान्त वर्णन किया गया है राज-पूताना और गुजरात के भीलों का विशेष उल्लेख है जहाँ कि भीलों की घनी बस्ती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर, रहन-सहन, खान-पान और रीति रिवाज में थोड़ा-बहुत हेर-फेर दिखाई देता है, लेकिन मुख्य बातें जो इस पुस्तक में दी गई हैं वे प्रायः सब जगह इसी रूप में मिलती हैं। इस पुस्तक की रचना में 'राजपूताना

गजेटियर' (The Gazetteer of Rajputana), शेरिंग हिन्दु ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स (Sherring's Hindu Tribes and castes), 'मेल कोम्स मेमॉरीज ऑफ सेन्ट्रल इंडिया' (Mal colms Memoirs of Central India) 'थाम्पसन्स रूडिमेन्ट्स ऑफ भील लैंग्वेज' (Thompsons Rudiments of the Bhil Language) 'शेफर्ड ऑफ उदयपुर' (Shepherd of Udaipur) अंग्रेजी पुस्तकें तथा "भीलो ना लग्न नी रीतो" गुजराती पुस्तक से लेखक को बड़ी सहायता मिली है। कुछ-कुछ भीलों का रहन-सहन, खान-पान और रस्म-रिवाज देखने का भी अवसर प्राप्त हुआ है जिससे पुस्तक लिखने में आसानी रही। लेखक उपरोक्त पुस्तकों के रचयिताओं का पूरा ऋणी है। साहित्य की दृष्टि से इस कृति में कई त्रुटियाँ रही हों तो विद्वान् पाठक क्षमा करेंगे। आदिम जाति के विषय पर हिन्दी-साहित्य में इस पुस्तक को कुछ भी स्थान मिला तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा। (देखिये नवीन पृष्ठ ७-६)

आज से इक्कीस वर्ष पूर्व जब कि लेखक उदयपुर से १४ से मील दूर, भील प्रदेश में डिप्टी हाकिम नियुक्त हुआ था, तब मेरे साहित्यिक मित्र श्री बलवन्त सिंह मेहता ने मुझे बचत समय में, इस जाति का अध्ययन करने का संकेत किया और कुछ आवश्यक पुस्तकों की ओर भी मेरा ध्यान आकर्षित किया। भील-क्षेत्र में थोड़े समय के लिये रहने से, जो भीलों के विषय में गजेटीयर में पढ़ा, उसको असली रूप में अवलोकन किया। ज्यों ज्यों अध्ययन और अनुभव बढ़ता गया त्यों त्यों इस जाति के विषय में, प्राचीन पुस्तकों की भी खोज होने लगी जिनमें से Thompsons Rurdiment's of Bhil Language अंग्रेजी पुस्तक और "भीलो ना लग्न नी रीतो"

गुजराती पुस्तक मुख्य हैं। इन्दौर पुस्तकालय में, मध्यभारत और खान देश के भीलों के बारे में पढा और गुजरात के भीलों का हाल, भील सेवा मण्डल दाहोद की वार्षिक रिपोर्ट से मालूम हुआ। भीलों का इतिहास, टॉमसन साहब की पुस्तक की प्रस्तावना में और नृत्य का विवरण, Shepherd of Uduipur नाम की पुस्तक में मुकर और रोचक दिया गया है। तुलनात्मक अध्ययन के लिये इ डियन गजेटियर की पुस्तक Jhe Beg Hor और भगवानदास केला की प्रकाशित पुस्तक हमारी आदिम जातियाँ से भी वहुत सहायता मिली है। सामाजिक रीति-रिवाज को लिखने में 'भीलो ना लग्न नी रीतो' और मेवाड़ तथा राजस्थान गजैटियर्स का आधार लिया गया है। इन प्राचीन तथा अर्वाचीन पुस्तकों के मूल आधार पर, लेखक ने,. भील-क्षेत्र के अनुभव को मिश्रित करके, इस पुस्तक की रचना की है।

भीलों की उत्पत्ति के विषय में, आधिदैविक कथाएँ अवश्य है किन्तु प्रति वर्ष शकर और गौरी के उपलक्ष्य में, नृत्य और नाटक करने से महादेव का चिन्ह वृषभ बैल को चुराने के कारण, आज भी पशु की चोरी करने में अपने को गर्वान्वित मानने से और भील प्रदेश में स्थान स्थान पर शँकर की मूर्त्तियाँ मिलने से, इस परिणाम पर पहुचते हैं कि इस जाति का भगवान् महादेव से घनिष्ट आधिदैविक संबंध है। प्राचीन और उच्च कालीन में भी उनके राज्य स्थायी होने से और राजस्थान में राज्य-निर्माण में इनका हाथ होने से, इस जाति ने वीरता और साहस का अनुपम परिचय दिया है। भील अच्छे सैनिक भी साबित हुए हैं और भील पल्टन में भी अधिक संख्या में भर्ती हुए हैं। आधुनिक वातावरण से दूर रहने से और प्रकृति के पास में रहने से, इनका जीवन, मस्त, स्वतन्त्र और कुतुहल मय बन गया है। अधिक

कमाने की ओर इनकी लालसा नहीं रहती और जो साधन सन्निकट होते है उनसे अपना काम चला लेते हैं। जो मिला उसको परस्पर बाँट लेने और मिल कर काम करने से, ये किसी से पीछे नहीं हैं। संगठन और सहन-शक्ति में बहुत बढे चढे है। यदि इस कौम को अपने ही ढंग से, उन्नत की जाय तो मुझे विश्वास है कि अपना विकास करते हुए, भारत के उत्थान और अभ्युदय में पूरा सहयोग दे सकते हैं।

अन्त में मैं दो शब्द धन्यवाद के राय साहब केशरीसिंहजी भूत-पूर्व दीवान किशनगढ स्टेट और श्रीयुत् देवेन्द्र सत्यार्थी के प्रति लिखे बिना नहीं रह सकता। राय साहब ने मुझे कुछ उपयोगी पुस्तकों की ओर संकेत करके प्रोत्साहन प्रदान किया और श्रीयुत् देवेन्द्र सत्यार्थी ने, जिन्होंने अपना अमूल्य-जीवन भारत के ग्रामीण गीतों के संग्रह में अपर्ण किया है मेरी पहली पाण्डु-लिपि देख कर कई उत्तम और उपयुक्त बातों की ओर ध्यान दिलाया, जिसके अनुसार काट-छाँट करके दूसरी पाण्डु-लिपि तैयार की, जो पुस्तक रूप में पाठकों के सामने है। सबसे अधिक कृतज्ञता में श्री बलवन्तसिंह मेहता, सदस्य भारतीय लोक सभा के प्रति प्रकट करता हूं जो मुझे इस पुस्तक को लिखने के लिये प्रारम्भ से ही प्रेरित करते रहे और समय समय पर सहयोग देते रहे।

जोधसिंह मेहता
उदयपुर (राजस्थान)
१ जुलाई सन ५४

आदिनिवासी भील

१. प्रारम्भिक विवरण

'भील' शब्द—

भील शब्द द्राविड़ भाषा के 'वील' शब्द से निकला है जिसका अर्थ कमान है। तीर कमान चलाने में निपुणता प्राप्त होने से सम्भवतः भील का यह नाम रखा गया हो। इस शब्द का प्रयोग सन् ६०० ईस्वी से चला है। इसके पहले भील जाति 'पुलिन्द जाति', 'वन-पुत्र', 'वनराज' के नाम से विख्यात थी। पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें "टेसिया के नाटे" (The Pygmies of Ctesias) और 'पत्ते पहिनने वाली जाति' कहा है। अनहिलवाड़ा के इतिहास मे मुसलमान लेखकों ने इनका 'शत्रु और मित्र' की भाँति वर्णन किया है।

उत्पत्ति—

भीलों की उत्पत्ति के विषय में महाभारत, पुराण और रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। महाभारत में यह

वर्णन किया गया है कि एक समय महादेव अस्वस्थ होने के कारण, जगल मे वृक्षों की छाया में आराम कर रहे थे, सहसा उनके सामने एक सुन्दर स्त्री आई जिसके प्रथम दर्शन से सब रोग दूर हो गये। इससे महादेव उससे प्रेम करने लगे[1] जिससे कई पुत्र उत्पन्न हुए। इन पुत्रों मे से एक सबसे कुरूप था। इसने एक बार महादेवजी के वाहन वृषभ को चुरा कर मार डाला। भगवान् शकर इस बात पर बडे क्रोधित हुए और कुरूप लड़के को मनुष्यो की आबादी से दूर वनों और पर्वतों में निर्वासित कर दिया। इसी कुरूप पुत्र की सन्तान भील' समझे जाते हैं और वे 'महादेव के चोर' के नाम से पुकारे जाने मे भी अपने को गौरवान्वित मानते हैं[2]।

पौराणिक कथा इस प्रकार है कि अंग का पुत्र राजा वेण था जो ब्राह्मणों और ऋषियों को बहुत सताया करता था। इस पर इन्होंने क्रोध मे शाप देकर उसको मार डाला। लेकिन वेण का पुत्र न होने से चारों ओर हाहाकार मच गया और यह चिन्ता होने लगी

---

1 Rononey's wild Tulees of India pp. 24. 1882.

2 'I assert, threfore, that i n remote times this Community has played an illustrions part in building up Hindu religion and culture"–Taken from the speech of Mr. M.R Jayakar, delviered on 15th January 1927 on the occasion of the annual gathering of the BhilSeva Mandal, Dahod

कि विना राजा के देश में अशान्ति बढ़ेगी। मन्त्र-बल से फिर उन्होंने वेण के शरीर में से 'निषाद' नाम का पुत्र पैदा किया। निषाद की सन्तान जंगलों और पहाड़ों में रहने लगी और भीलों के नाम से कहलाने लगी।

उपरोक्त दन्त कथाओं मे कहां तक सत्य है यह कहना मुश्किल है किन्तु भील-प्रदेश में महादेव के स्थान जगह-जगह होने से भाद्रपद महीने मे 'गवरी' (गौरी यानि पार्वती के निमित्त) उत्सव मनाने से और अपने को 'महादेव का चोर' कहलाने में भी गर्व करने से, यदि इस जाति की अधिदैविक उत्पत्ति मानी जाय तो कोई आश्चर्य नही है।

भीलों का वर्णन रामायण में भी मिलता है। शवरी जाति की भीलनी थी जिसके हाथ से भगवान रामचन्द्र ने झूठे बेर खाकर उसको कृतकृत्य किया था। रामायण के निर्माता महाकवि वाल्मिकि का जन्म भी एक भील के घर में हुआ था। महाभारत के आदि पर्व मे भील 'एकलव्य' का जिक्र आया है जिसको धनुर्विद्या का ऐसा अभ्यास था कि उसके सामने अर्जुन भी टिक नहीं सकता था। इन प्राचीन उल्लेखों से हमको मानना पड़ेगा कि बहुत पुराने समय मे, इस जाति ने हिन्दू-धर्म और संस्कृति के निर्माण में अच्छा सहयोग दिया था। १

---

(1) Heber's India P. 495. 1829

प्राचीन ग्रन्थों को छोड़ कर जब हम पाश्चात्य विद्वानों का मत ढूंढते हैं तो उनके विचार से भी भील इस देश के मूल निवासी माने गये है जो अपना प्राचीन इतिहास होने का दावा कर सकते हैं। ये लोग अपने उन्नत दिनों मे, जंगलों और पहाड़ों मे नहीं रहते थे, किन्तु मैदानों की उपजाऊ भूमि पर, वास करते थे। मालवा और मध्य-हिन्द मे इनके राज्य स्थापित थे, कई गढ और किले इनके आधीन थे। बाद मे यहॉ से हटाये जाने पर पहाड़ों और जंगलों मे बस गये, जहॉ ये आज भी रहते हैं। इतिहास की दृष्टि से हम कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की कुछ प्रामाणिक सम्मतियॉ नीचे उद्धृत करते है —

(१) ये हिन्दुस्तान के असली वासिन्दे हैं। राजपूत भी अपने इतिहास मे यह मानते हैं कि कई शहर और गढ भीलों के नाम से पुकारे जाते हैं। (२) भीलों को एक अलग जाति मानी जाती है और यह उन जातियों मे आती है जो प्राचीनता का दावा रखती हो (३) कर्नल-टॉड ने बिना किसी सदेह के इस जाति को आदिम जाति माना है। (४) यह हिन्दुस्तान की प्राचीन और असली कौम है, जो किसी जमाने मे उपजाऊ भूमि की मालिक थी।

---

1 Malcolm's Cantral India P. 517. 1823
2 Tod's Travels in Western India P. 34 1839
3 Wilson's Evangelization of India P. 308. 1849
4 Talbotwheeler's History of India P. 82. 1867

वाद में कठिन पहाड़ों और जंगलों में रहने लगी। (५) महा-भारत में यमुना नदी के दक्षिण की ओर भरत के राज्य के समीप, और रामायण में गंगा और यमुना संगम के नजदीक, दूर पूर्वीय भाग में इन लोगों का निवास स्थान वतलाया गया है। (६) वहाँ से हट कर सोन, नर्मदा महानदी के जंगलों में आ वसे और अपनी भाषा धर्म और स्वभाव को वैसा ही वनाये रखा। (७) लेकिन इन्होंने द्राविड़ों को दक्षिण में नहीं भगाया। जहाँ-जहाँ इन्होंने सभ्यता के परे जंगल और पहाड़ देखे, वहाँ-वहाँ ये लोग वस गये। (८) भील-जाति अव मिश्रित कौम हो गई है, लेकिन आदि-भील रंग में काला, कद मे नाटा गाल की हड्डियाँ निकली हुई, नाक लम्वा तथा श्रम-शक्ति और शिकार के असाधारण गुणों मे युक्त पाया जाता है। (९) भीलों की गिनती भारतवर्ष की जगली जातियों में की जावे या नहीं, परन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि यह जाति इस देश मे पुरातन काल से चली

---

5 Marshman's History of India P. 2 and 3 1871

6 Caldwell's grammer of the Drauidian Languages P. 108–109. 1875

7 Captain Rose's report on the Bhils, Bombay Governmet–Selections Vol. X P. 226

8 Sherring's Hindu Tribeas and Castes Vol. II P. 291. 1879

आती है। इस जाति के गुण, स्वभाव और रहन-सहन से यही प्रकट होता है कि भील देश के आदिम निवासी हैं, जिन्होंने अपना अस्तित्व अलग बनाये रक्खा। (१०) कुछ लोग इनका आदि स्थान मेवाड़ और मारवाड़ बतलाते है और कहते हैं कि यहाँ से ये दक्षिण में खान-देश की तरफ उजाऊ प्रदेशों मे हटाये गये थे।

अब हम सिलसिले वार इतिहास के पन्ने उलटते है तो ईसा के १५०० वर्ष पूर्व कृष्ण का भीलों को जीत कर गुजरात मे राज्य स्थापित करने का हाल मिलता है। उस समय गुजरात के वैराट नगर पर भील रानी श्री दोशरा राज्य करती थी। ईसा के ८५० वर्ष पूर्व मालवा का राजा धानजी था जो भील ही माना जाना है क्योंकि भीलों मे ऐसे नाम बहुत सुने जाते है। धानजी के बाद बराबर ३८७ वर्ष उसके वंशजों ने मालवा पर शासन किया था। उस समय यह जाति बड़ी बलवान थी और ईसा के ७३० वर्ष पहले दिल्ली की अधीनता भी हट गई थी। इसके बाद १३०० वर्ष तक कोई इतिहास भीलों का नहीं मिलता। सन् ६६६ ईस्वी मे तीन भील स्त्रियों का वर्णन आता है। इनमे से एक दयालु स्वभाव वाली स्त्री ने दुश्मनों के आक्रमण के समय जंगल में भटकती हुई पचासर के महाराजा जयशंकर की रानी रूप सुन्दरी को शरण दी थी। रूप सुन्दरी ने इस भीलनी के यहाँ छ वर्ष बिताये थे।

---

10 Rowney's wild Tribes of India P 24. 1882

ग्यारहवीं शताब्दी में मेवास देश भीलों के अधीन था। मुख्य सरदार का नाम आशा था जिसको गुजरात के राजा कर्ण ने आशावल (जहाँ आज अहमदाबाद है) में हरा कर मार डाला। इस शताब्दी में मेवाड़ का बहुत सा भाग और मध्यभारत का उत्तर पश्चिमीय प्रदेश भीलों के अधिकार में था। धीरे-धीरे राजपूतों ने भीलों से यह प्रदेश जीत लिया। भीलों को काबू में रखने की गर्ज से कुछ राजपूत वहीं पर बस गये, जो 'गरासिये' राजपूत कहलाते है। मेवाड़ के भौमट प्रदेश मे गरासिये राजपूत हैं जिनमें से कुछ-एक अच्छे जागीर-दार हैं।

सन् ११६० ईस्वी के आस पास आबू का राजा जेतसी परमार का जिक्र आता है जिसने गुजरात के राजा भीम देव द्वितीय को अपनी लड़की की शादी करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह अजमेर के राजा के साथ विवाह करना चाहता, था। यह खबर पाकर भीम-देव ने जेतसी के साथ लड़ाई छेड दी और आबू गढ को जीत लिया। जेतसी परमार को इतिहास-कार भील बतलाते है। परमार गोत के भील मेवाड़ में आज भी मौजूद हैं। सन् १३०० ईस्वी में झाबुआ का भील राजा शुक-नायक का हाल पढ़ने में आता है जिसने धोलिता के राजपूत सरदार से मिल कर गुजरात के शासक को सकुटुम्ब मार डाला। इस पर दिल्ली के बादशाह ने उसके विरुद्ध लड़ाई लडी, शुकदेव और उसके साथी मारे गये और उनके गढ छीन लिये गये।

सन् १६६७ ईस्वी में भील-इतिहास में एक नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। जब मुगल बादशाह औरंगजेब ने हिन्दुओं को इस्लाम धर्म अंगीकार कराने की चेष्टा की थी तब प्रचारकों ने भील-प्रदेश मे जा कर भीलो को मुसलमान बनाया था। मुसलमान भील राजपूताना के दक्षिणी भाग मे पाये जाते है।

सन् १७६७ ईस्वी के लगभग राज-माता अहिल्या बाई मालवा पर राज्य करती थी। जो देश पहले खानजी के अधीनस्थ रहा था। भीलों को काबू में करने के वास्ते कई उपाय काम मे लाये गये लेकिन सब प्रयत्न निष्फल रहे। अन्त मे सख्त वर्ताव होने लगा सिर्फ माल असबाब पर कुछ कर वसूल करने की इनको छुट्टी थी।

१८ वी शताब्दी मे मरहट्टों के समय मे भीलों पर बड़ा अत्याचार हुआ था जिसका वर्णन सर विलियम हण्टर साहब ने अपनी लेखनी से इस प्रकार किया है— "अठारहवीं शताब्दी में भीलों के साथ राज-द्रोहियों का सा वर्ताव किया जाता था। ऑफिसरों को हिदायत थी कि बिना किसी प्रकार की तहकीकात के उनके प्राण तक लिये जावें। देश के अशान्ति-पूर्ण वातावरण मे जो कोई भील मिलता वह बिना किसी जॉच पड़ताल के हण्टरों से मारा जाता और फॉसी पर लटका दिया जाता। इस तरह सैंकड़ों कष्ट दिये जाते थे। नाक चीर कर और कान फाड़ कर ये लोग सूरज की कड़ी धूप में तपाये जाते थे। तपे हुए लोहे के पाटों पर सॉकलों से बाधे जाते थे और सैंकड़ों पहाड़ों से लुड़का दिये जाते थे। गिरोह के गिरोह, जिनको

रिहा करने का वादा कर दिया गया था, वे कत्ल कर दिये गये, उनकी औरतों के अग, भग कर दिये गये, धुएँ में गले घोट दिये गये और बच्चे पत्थर पर पछाड़ दिये गये।"

सन् १८०४ से सन् १८१७ ईस्वी तक मरहट्टों के अन्याय के पीछे पिण्डारियों ने पहाड़ी भीलों के साथ बड़ी लूट मार मचाई थी। भीलों के कई गाँव बर्बाद कर दिये गये थे। दो हजार या उससे ज्यादा पिण्डारी घुड़-सवारों का जत्था चढ आता और जो मवेशी जंगम जायदाद मिलती वह हरण करली जाती, इन धावों मे बडी निर्दयता का व्यवहार हुआ करता था। भय और अशान्ति सब जगह भील प्रदेश में फैल गई थी। उस समय दो ही उपाय भीलों के पास अपने बचाव के रह गये थे— एक तो पिण्डारियों का साथ देना और दूसरा घर और खेत छोड़कर जंगल में भाग जाना। अधिकतर लोगों ने पहले उपाय का ही अनुसरण किया।

सन् १८१८ ईस्वी में ब्रिटिश राज्य की नीति से राजपूताना और मालवा में भीलों के उपद्रव को शान्त करने के लिये भील कोर और भील एजन्सी स्थापित हुई थी जिससे सर्वत्र भील प्रदेश मे शान्ति छा गई। इसके बाद भीलों ने गडबड़ नहीं किया। जहाँ कहीं किसी ने सिर ऊँचा किया वहाँ वे सरल उपाय से शान्त किये गये। सन् १८५७ ईस्वी में गदर के समय भीलों ने शान्ति रखी और अपने ब्रिटिश ऑफिसरों का साथ दिया।

डूंगरपुर में उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के आरम्भ के लगभग, यहाँ गोविन्द गुरु नाम के साधु ने, भील-

सुधार आन्दोलन शुरु किया। जब इससे, जाति मे जागृति हुई तो डूंगरपुर, बॉसवाड़ा और खेरवाड़ा छावनी की पलटनों द्वारा, मानगढ़ की पहाड़ी पर, एकत्रित बागड (डूंगरपुर, बॉसवाड़ा और दक्षिणी मेवाड़) के भीलों पर गोलियॉ चलाई गई और करीब ८०० व्यक्ति मारे गये। सन् १८६६ में रिजेनरी काउन्सिल डूंगरपुर ने, भील जाति को जरायम पेशा ठहराई और सन् १६२० से यहॉ समय समय पर भील आन्दोलन जोर पकड़ता रहा और सरकार द्वारा दमन होता रहा। भारत के स्वतन्त्र होने से एक वर्ष पूर्व सन् १६४६ ई० मे ३६ गिरफ्तारियॉ हुई, चार आदमी निर्वासित किये गये, लाठी-चार्ज हुआ और करीब सौ पुरुष घायल हुए।

मेवाड़ मे भी, श्री मोतीलाल तेजावत, प्रसिद्ध भील नेता ने सन् १६२१ (सम्वत् १६७८) मे, भील आन्दोलन का बीड़ा उठाया। स्थानीय मेलों और उत्सवों का उपयोग कर, भील जनता को अपने अभावों और कष्टों का ज्ञान करवाया। 'मेवाड़-पुकार' पुस्तिका का गॉव गॉव मे प्रचार कराया। जनता में मरने मारने की भावना प्रबल हो उठी। जागीरदार और अधिकारी घबरा उठे। भील आन्दोलन को बुरी तरह से दबा दिया गया और सिरोही, मेवाड़ और दान्ता मे कई गॉवों को जला दिया गया। ईडर में, ७ मार्च १६२२ ईस्वी को, १२०० आदमी शहीद हुए।

इस समय, महात्मा गॉधी की प्रेरणा से गुजरात के नेता श्री मणिलाल कोठारी ने भीलों और श्री तेजावतजी को तथा दूसरी ओर

मि. हालैन्ड को समझौते के वास्ते तैयार किया परन्तु राजपूताना एजेन्सी वचन देकर भॅग करती रही। 'सन् १६२२ मे, राहेड़ा तहसील में– भूला और बलोलिया– दो गॉव जला दिये गये, ६४० घर नष्ट किये गये और ३२५ परिवारों तथा १८०० आदमियों की क्षति हुई। अन्न, पशु, घास व अन्य माल लूटा गया या जलाया गया। श्री तेजावतजी को सात वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया पर आठ वर्ष तक आप गुप्त रहे और अधिकारियों के हाथ न आये। एक अन्य व्यक्ति को मोतीलाल तेजावत समझ कर, उसका मस्तक जगह जगह घुमाया गया जिससे लोगों पर आतंक छा जाय। अन्त में, ३ जून सन् १६२६ को स्वेच्छा से खेड़ब्रह्म पर श्री तेजावतजी गिरफ्तार हुए और १५ अप्रेल सन् १६३६ को छोड़े गये। सन् १६३८ में मेवाड़ प्रजा-मण्डल की स्थापना होने पर, दूसरी बार जेल भेजे गये। सन् १६४२ के अगस्त आन्दोलन के उपलक्ष मे आप डेढ़ वर्प जेल मे रहे। २४ जनवरी १६४६ को फिर गिरफ्तार किये जाकर उदयपुर सेन्ट्रल-जैल मे रखे गये। श्री तेजावतजी आज भी मौजूद हैं। भील इनको 'मोती वावसी' (मोती वावजी) कहकर पुकारते हैं और देवता की भांति, इनके भेट और मिन्नत करते हैं।

२—आबादी और प्रदेश

वम्बई-प्रान्त, मध्य-प्रान्त, मध्य–देश, राजपूताना और बड़ौदा मे भीलों की विशेप आवादी है। सन् १६२१ ईस्वी मे भील-जाति की जन-संख्या १७, ६५, ८०८ शुमार हुई थी। इसके बाद सन् १६३१ ईस्वी मे फिर जन-गणना हुई थी तब २०,१३,११७ की

संख्या आई। इस साल में १० प्रतिशत वृद्धि हुई है और जहाँ तक ख्याल है सन् १९३१ ईस्वी के बाद भी इनकी जन-संख्या बढ़ती जा रही है। इनका प्रदेश खास कर जंगलों और पहाड़ों में है जैसी कि कहावत है "ऊँचा परबत गहवास गुंजा-हार और बालर-ग्रेस" अर्थात् ऊँचे पहाड़ों पर वास करते हैं, गुंजा (चरमू) का हार बना कर पहिनते हैं और बालर-घास काटते हैं। अक्सर पाया गया है कि एक ही गोत के भील एक जगह बसे हुए हैं। जैसे डाली गुजरात में और दामा खैर-वाड़ा (मेवाड़) में। हर एक गोत का कोई मुख्य देवी-देवता होता है। जिनकी वार-त्योहार पर पूजा होती है। आदिम जातियों में पशु, पक्षी तथा वृक्ष के चिन्ह पर गोत होता है और विवाह भी भिन्न गोत मे ही होता है। यही प्रायः भीलों में भी देखने में आया है। एक भील-युवक अपना विवाह अपने गोत को छोड़ कर भिन्य गोत में करता है।

बम्बई-प्रान्त

बम्बई-प्रान्त में गुजराती भील बसते है जिनकी संख्या सन १९२१ ईस्वी में ७, ८३, ८०० थी और सन् १९३१ ईस्वी में बढ़ कर ९, ३७, ०१३ तक पहुंच गई, और सन् १९४१ मे ८, २०,५०८ रह गई। सन् १९२१ ईस्वी की जनसंख्या के अनुसार इनकी आबादी नीचे लिखे हुए प्रदेशों में विभक्त है—

पश्चिमी खान देश—२११, ३००
रेवा कॉटा एजेन्सी—१८४,०००
पंच महाल—६८,५००

नासिक—५७,०००

मही कॉटा एजेन्सी—४६,०००

पूर्व खान देश—३८, २००

थर पार कर—३३,६००

हैदराबाद सिंध—१३,५००

विविध—१०४,०००

बम्बई-प्रान्त में कुछ आबादी भीलों की दो भागों में बॉटी जा सकती है। (१) गुजरात का दक्षिणी-भाग (२) पंचमहाल जिला और रेवाकॉटा एजेन्सी। गुजरात के दक्षिणी भाग में खाखुर, बबूल और नीम वृक्ष अधिक हैं जहॉ चीते भेड़िये और दूसरे जंगली जानवर बहुत रहते हैं। दूसरे भाग में छोटी छोटी पहाड़ियें और चट्टानें इस तरह फैली हुई हैं जैसे मुँह पर चेचक के दाग। यहॉ की जल-वायु साधारण है। सरदी मामूली पड़ती है, वृष्टि ३०-४०इंच के लग-भग हो जाती है, भूमि पथरीली होने के कारण पानी नहीं ठहरता। तालाब और नदियॉ भरी हुई रहती है।

राज-पूताना—

राज-पूताने में पॉच बार भीलों की जन-गणना हुई जिसके अङ्क नीचे दिये जाते हैं। सन् १६५१ की जन गणना मे भीलों की सख्या अलग निर्धारित नहीं हुई है।

राजपूताना—

	सन् १६०१	सन् १६११	सन १६२१	सन् १६३१	सन् १६४१
राजपूताना	३३६,७८६	४४८,६१०	५४६,५३१	६५५,६४७	७,४६,७४८
अजमेर-मेरवाड़ा	६,०५६	६,८१२	८,३१३	८,५७२	

सन् १६४१ ईस्वी की गणना से (ईडर और विजय-नगर) को छोड़ कर सारे राजपूताना एजेन्सी के भीलों की संख्या ७,५८, ३६० आई है। उपरोक्त अंकों से स्पष्ट जाहिर है कि इनकी संख्या प्रति दसवें वर्ष में बढती गई है। राज-पूताना में भील अलवर, भरत-पुर, धौल-पुर और करोली को छोड़ कर सब जगह पर मिलते हैं। ये मेवाड़ और सिरोही के दक्षिण पश्चिम की ओर सिरोही से लेकर डूँगर-पुर तक, पहाड़ियों मे सबसे ज्यादा तादाद मे बसे हुए हैं। प्रताप-गढ़, बाँस वाड़ा, डूंगर-पुर और छप्पन (नीमच के पास) के पहाड़ों और किलों मे इनके हजारों गांव आबाद हैं। सबसे अधिक आबादी बाँस-वाड़ा, डूंगर-पुर, भालावाड़ (पाटन) कोटा, कुशलगढ़ और मेवाड़ मे हैं। आबादी के कुछ अंक नीचे लिखे जाते हैं—

नाम-प्रदेश	भील-संख्या	कुल संख्या के मुकाबले मे प्रतिशत भील संख्या
उदयपुर (मेवाड़)	११८१३८	— ११ प्रतिशत के लगभग
बाँस-वाड़ा	— १०४,३२१	— ६३ ,,
जोधपुर	— ३७,६६७	— २ ,,
डूँगरपुर	— ३३,८३७	— ३४ ,,
कोटा	— १२,६०३	— २ ,,
प्रतापगढ़	— ११,५१३	— २२ ,,
सिरोही	— १०,३७२	— ७ ,,

राज-पूताने के भील अपने को गुजरात के भीलों से ऊँचे दर्जे के मानते हैं। इनके आपस में शादी और भोजन का व्यवहार नहीं होता। राजपूताने में भील विकट पहाड़ों में रहते हैं। आव हवा अच्छी है। पानी खूब बरसता है और सर्दी भी कहीं-कहीं बहुत पड़ती है। पहाड़ी जमीन होने के कारण पैदावारी अच्छी नहीं है, किन्तु पहाड़ों के बीच मे जहाँ समतल भूमि आगई है वहाँ खेती अच्छी होती है। पहाड़ियों के ढाल मे जंगली-नाज बहुत बोया जाता है।

मध्य-प्रदेश—मध्य-भारत और सौराष्ट्र

मध्य प्रदेश के भील राजपूताना से आकर वसे हैं। झाबुआ मे ३६ फी सदी और सालोद में ६० फी सदी के लगभग भीलों की आवादी है। मालवा और खान देश के पश्चिम की तरफ की पहाड़ियाँ-विन्ध्याचल और सतपुड़ा में इनकी पुरानी बस्ती है। सन् १९४१ में इनकी जनसंख्या २९,५७० शुमार हुई है। मध्य-भारत मे ६,२०,१७५ और सौराष्ट्र मे १,५५८ भीलों की संख्या गिनी गई है। कुल भारत के भील सन् १९४१ मे २२,४८,१५२ गिने गये हैं।

जाति-भेद—

भीलों के गोत को 'अड़ख' कहते हैं। अलग अलग अड़ख अलग अलग नाम से पुकारी जाती है। कुछ पूर्वजों के नाम से, कुछ राजपूतों के नाम से, कुछ पदवी के नाम से अड़ख बोली

जाती है। एक ही अड़ख में कभी विवाह नहीं होता। राजपूताना के पहाड़ी प्रदेश में अक्सर पाया गया है कि एक ही अड़ख के भील एक ही जगह बसे हुए हैं जिसको 'पाल कहते हैं। 'पाल' कई भीलों के तितर-बितर घरों के समुदाय को कहते हैं। जहाँ पाल बड़ी होती है तो उसके अलग अलग हिस्से को 'फला' कहा जाता है। हर एक 'पाल' और 'फला' का मुखिया 'गमेती' कहलाता है, मध्य हिन्दुस्तान में इसको 'तिग्गी' बोलते हैं। 'गमेती' के नीचे दर्जे में 'भॉजगड़िया' होता है जो जाति-पंचायत में प्रमुख रहता है। 'पाल' और 'फला' के भील हर एक काम अपने 'गमेती' और 'भॉजगड़िया' की सलाह से करते हैं। आपस के झगड़े भी अधिकतर 'गमेती' और 'भॉजगड़िया' ही निपटाता है। भीलों का जाति-संगटन इतना अच्छा है कि बिना गमेती के पत्ता नहीं हिलता। आवश्यकता होने पर भील गमेती ढोल देकर सारी पाल को इकट्ठा कर लेता है। सब गमेती के आदेश को निःसंकोच और बिना बहस मानते हैं, भीलों के अच्छे सगठन का यही कारण है।

मेवाड़ मे १६, प्रतापगढ़ मे ३७, डूँगरपुर में २६, और जोधपुर में ५६ मुख्य अड़ख सुने गये हैं जिनकी कई उपशाखाएँ होंगी। मध्यभारत में करीब १०० उपशाखाएँ हैं। राजपूताना और गुजरात के भीलों के कुछ अड़ख, उनके स्थान और देवी देवता के साथ नीचे उद्धृत करते हैं :—

क्रम संख्या	नाम-अड़ख	स्थान	नाम देवी-देवता
१	अरिआत या हरिआत	नयु गामड़ा लतोड़	कालिका माता (स्त्रीलिंग)

२ – असारी या अहारी – भीलक – मुल्यो (पुल्लिंग)
३ – कटारा – नतारा – मालो (पु.)
४ – कड़ा हुआ – कागदर – ओलो (पु.)
५ – खराड़ी – खेरचो – अम्बाव (स्त्री.)
६ – गुमार – भंस-वाड़ा – अम्बाव (स्त्री.)
७ – गोडाडामेर – धका-वाड़ा – वाजेड़ (स्त्री)
८ – घोघरा – वड़ा – मसीतलो (पु.)
९ – डमरा – तणका-वाड़ा – लीवेल (स्त्री.)
१० – डाली – गुजरात – वड़वेल (स्त्री)
११ – डामेर – धंका-वाड़ा – कन्यालो (पु.)
१२ – होरा – थुर – थुर (स्त्री)
१३ – तव ज्याड़ – लंबा-वाडा – भेड़ (स्त्री.)
१४ – तेजोत – सराड़ा, सराहा – पीपल हेण (स्त्री)

१५ – दाभा – खेरवाड़ा – थुर ,,
१६ – ननामा – घेवर – थुर ,,
१७ – नाडा – थुर – थुर ,,
१८ – परमार – सहारा – पीपल हेप ,,
१९ – पांडेर – लीमड़ा – पीपल हेण ,,
२० – फरगी – सावंद – करहेल ,,
२१ – वलड़ा – कठारिआ – थुर ,,
२२ – वांमणा – उपरी – कन्यालो (पु०)

क्रम संख्या	अड़ख	स्थान	नाम देवी देवता	
२३ –	बोड़ात	– बुरी,हामीमाली	– कन्यालो	,,
२४ –	भगोरा	– वावल वाड़ा	– करहेल	(स्त्री०)
२५ –	माहणी	– सदा वाड़ा	– कड़वेल	,,
२६ –	मेणात	– जड़ल	– लीवेल	,,
२७ –	मोड़िआ	– लीमड़ा	– पीप लहेण	,,
२८ –	वगात	– वलवाड़ा	– थुर	(स्त्री०)
२९ –	बीहात	– मोरी	– कन्यालो	(पु०)
३० –	सोलवीओ	– धनहोर	– कन्यालो	(पु०)
३१ –	हुरात	– हओड़ा	– पेड़	(स्त्री०)
३२ –	हेला	– थुर	– थुर	(स्त्री०)

इसके अतिरिक्त मेवाड़ मे अचारी, अहोड़ा, उमरावत. कगोरा, कोटड़ा, कसोटिया, कानात, खोखरिया, खुपेट, गमेती, गरासिया, गोड़ा, गोपार, गोदावत, चडात, चौहान, जोहयाला झावला, तवीयार, तावड, ढीत्राण, ननोंत, पलात, पटेला, बवेड़ा, बडगा, भराड़ा, भणात, म्यावत, मनात, मोड़िआ, रोजड़, राजेड़, लीम्बावत, लठ्ठा, हीरोत, हीरावत, हीरात और गुजरात में आमलियार, अड़, ओगड़ कलमी, कलारा, किसोरी, खार, गमार, गोहल, चोपड़ा डांगी, तरवाड़िया, निसरता, पलास, पन्डा, वामनिआ, भूरिया, भेरी, मकवाना, भूणिया, भोहा, मंडी, रौझ, हुक्मी सोलंकी नाम के अड़ख सुने गये हैं ।

कालिये और पालिये भील–

राजपूताने में कुछ भील अपने को 'ऊजले' यानि शुद्ध कहते हैं। वे सफेद रंग की कोई वस्तु नहीं खाते जैसे सफेद भेड़। ऊजले भीलों की सख्या वहुत कम है। सराड़ा और खेरवाड़ा (मेवाड़) में कुछ भील 'कालिये' कहलाते हैं। इनकी शरीर-रचना अफ्रीका के हब्शी लोगों से मिलती जुलती है। वर्ण काला होने के कारण ही ये 'कालिये' कहलाते हैं। कालिये और ऊजले भीलों की शरीर की आकृति में कोई विशेप अन्तर नही है। कालिये भील ऊजले भील को 'ऊजले' न कह कर 'पालिये' कह कर पुकारते हैं। कालिये भील की अपेक्षा पालिये भील के वस्त्र अधिक साफ सुथरे और अच्छे होते है वल्कि स्त्रियाँ पीतल और कभी कभी चाँदी के आभूपण भी पहिना करती हैं। कालिये भील शिकार और मछली मारने का काम अधिक करते हैं और पालिये भील खेती को ही अधिक पसन्द करते हैं।

गुजराती और खानदेशी भील–

भौगोलिक विभाग के अनुसार गुजराती और खान देशी भील भी वोले जाते है। खान देशी भीलो में कानेकामी और अदनादी दो मुख्य शाखाएँ हैं जिनका एक दूसरे के साथ भोजन व्यवहार होता है, विवाह नही होता। राजपूताने के दक्षिण में मुसलमान भील भी पाये जाते हैं जिन्होंने वादशाह औरंगजेव के समय में इस्लाम मजहव स्वीकार किया था।

ग्रामवासी, कृषक और वन्य भील–

पेशे के लिहाज से भीलों मे तीन भेद हैं–(१) ग्रामवासी (२) कृषक एवं (३) वन्य। ग्रामवासी भील वे है जो प्राचीन काल से परिस्थितिवश समतल भूमि पर रहते हुए आये हैं और अब प्राय चौकीदारी, खेती और मजदूरी पर अपना निर्वाह करते है। कृषक-भील अपना गुजारा कृषि यानि खेती से करते है और सदा से ऐसा करते हुए आ रहे है। वन्य-भील वे है जो ज्यादातर जंगलों मे रहते है और अपना जीवन पशु-पालन, चोरी-लूटमार और मामूली खेती करके बसर करते है। राजस्थान के दक्षिणी भाग मे वन्य-भीलों की तादाद बहुत है।

भील, भील्लाला, गरासिया और मीना में बहुत कुछ अन्तर है। कहीं कहीं भीलों को भी 'मीने' कहते है लेकिन असली मीने भीलों की जाति से अलग है। ये अपने को राजपूत वंश से निकले हुए बतलाते हैं और इनकी उत्पत्ति अधिक पुरातन नहीं है। 'भील्लाला' राजपूत और भीलों की एक मिश्रित कौम है जो मध्य हिन्दुस्तान और भोपावाडा एजेन्सी मे पाई जाती है। सादगी और सच्चाई मे भील भील्लाला से बढ़ कर है। गरासिये भोमट प्रदेश के राजपूत हैं जिन्होने किसी जमाने मे भील-स्त्रियों के साथ विवाह शादी की थी। यह अब अलग जाति मानी जाती है।

४—आकृति और स्वभाव

आकृति–

भील कद में छोटा होता है किन्तु काम करने में फुर्तीला और चपल दिखाई देता है। रंग काला, मुँह लम्बा, नाक छोटा और चपटा, आँखे लाल और गाल दबके हुए होते हैं। शरीर की रचना इस प्रकार की होती है कि किसी भील की तो हड्डी हड्डी गिनी जा सकती है। सामर्थ्य में भील किसी कदर कम नहीं है। कठिन से कठिन काम आसानी से कर लेता है। मस्त स्वभाव के कारण चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट की रेखाएँ स्पष्ट नजर आती है। दृष्टि इतनी तीव्र होती है कि पेड़ों के पत्तों में, भागते हुए शेर को दूर से देख लेता है।

स्वभाव–

जैसे भील काले होते हैं वैसे गुणों में भी निराले होते हैं। ये लोग बड़े वफादार (स्वामि-भक्त) खरे (सच्चे) और मिलनसार तथा नम्र होते हैं। सदैव प्रसन्न चित्त रहते हैं और सहन-शीलता मे भी अपूर्व हैं। रूडियार्ड किप्लिंग ने अपनी पुस्तक 'दी टुम्ब ऑफ हिज एन्सेस्टर्स' (The tomb of his ancestors) में इनका वर्णन करते हुए लिखा है कि " ये लोग जिसका विश्वास कर लेते हैं उसके ऐसे वफादार बने रहते हैं जैसे कुत्ता अपने मालिक का ", वास्तव में यही बात है। जिसका नमक खाते हैं उसका एहसान

अपनी उम्र तक बल्कि कभी कभी कई पीढ़ियों तक नहीं भूलते। जब कभी संकट का समय उपस्थित होता है तो ये अपने प्राण खतरे मे डाल कर भी अपने मालिक की रक्षा और सहायता करने को तय्यार रहते हैं। मेजर हेण्डले ने बयान किया है कि "भील लकड़ी काटने मे चतुर होते हैं। पहाड़ी रास्ते और सीधी पगडंडियाँ जानने मे भी इनको कमाल हॉसिल है। खराब से खराब रास्ते मे ये जा सकते हैं और ढालू से ढालू पहाड़ पर सरलता तथा शान्ति के साथ चढ सकते हैं। यदि इन पर विश्वास किया जाय तो बडे वीर और आज्ञाकारी प्रमाणित हो सकते हैं। स्वभाव पे भील हॅस-मुख होता है। अनेक प्रकार की सौगन्द खाने के बाद विचलित नहीं होते। तन-मन और यथा-शक्ति धन से सौगन्द को निभाने की कोशिश करता है।

इसमे कोई संदेह नहीं कि भीलों का स्वभाव खरा होता है। किन्तु बालकों की तरह चंचल होता है जिस तरह बालक भूलने के बाद किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करता उसी तरह ये लोग भी बड़े बेफ़िक्र होते है। एक वक्त का भोजन मिल गया तो दूसरी वक्त की चिन्ता नहीं होती। भील हमेशा स्वतन्त्र प्रकृति, अनियन्त्रित और संकोच शील पाये जाते हैं। एक बार जिसके साथ मित्रता कर लेते है उसके साथ प्रेम और सच्चाई से निभाते हैं। सहनशीलता इतनी है कि हर वक्त जोखिमदार कार्य करने से इन्कार नहीं होते खतरनाक सूरतों में अपना बचाव करना भी ये जानते है। तेजधूप और लू में कोसों दूर चलना, कड़कड़ाती हुई सर्दी

में नंगे बदन रहना, मुश्किल से मुश्किल पहाड़ पर चढ़ जाना, इनकी सहन शीलता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

भीलों की युद्ध प्रियता, वाहदुरी और साहस प्रशंसनीय है। यदि कोई सरकारी कर्मचारी भील को 'पाडा' कह कर पुकारे तो वह बड़ा खुश होता है मानो उसको सिंह की पदवी दी हो। यदि कोई सवार के घोड़े को मार डाले तो वह अपनी कोम में 'पाखरया' के नाम से बड़ा वहादुर समझा जाता है। भील बच्चों को शुरु से ही तीर चलाने का अभ्यास कराया जाता है और खेतों तथा जगलों में निर्भयता का पाठ पढाया जाता है। त्यौहार, मेले और उत्सवों पर तीर-धनुप और वन्दूक, तलवार को अपने पास आभूपणों की भाँति रखते हैं। शिकार खेलने का अच्छा शौक है। इस काम में कुत्तों को वे साथ रखते हैं। आखेट में फुर्ती और चतुराई रखते हैं। पुराने और निराले ढंग से भालू और सिंह का शिकार करना तथा दक्षता के साथ मछली मारना इनको खूब आता है।

भील उत्तम-अरण्य-वासी (Back woods man) होते हैं। पशु-पक्षियों का ज्ञान, वृक्ष और उनके पत्तों की पहचान में निपुण होते है। पर्वतों पर सुगमता से चढ़ना, जंगलों में रास्ते का पता लगाना, खोज करना, निशान लगाना, कुल्हाड़ी चलाना, झोंपडी वनाना और परिचित जंगली जड़ी बूटी से वक्त पर इलाज कर लेना इत्यादि वन-विद्या की साधारण वाते जो स्काउट को सिखाई जाती हैं उनमें सहज ही मिलती है।

विशेष गुण—

सचाई, एकता, अतिथि सत्कार और स्वामि-भक्ति ये चार इस जाति के विशेष गुण हैं। इनकी सत्य-प्रियता के बारे मे यह कहा जाता है कि सुदूर और अगम्य वनों में जो भील रहते हैं वे कभी झूठ नहीं बोलते। हाँ यह जरूर है कि शहरों के वातावरण मे आये हुए भीलों मे यह गुण कम पाया जाता है। वचन के पक्के और बात के बड़े पाबन्द होते है। अतिथि-सत्कार भी इनका अनुकरणीय है। घर पर आये हुए अतिथि का अच्छा सत्कार करते हैं। हर तरह से जगल में उसकी रक्षा करते हैं। यदि यात्री कितना ही असबाब लेकर भील के घर जा पहुंचे तो उसको किसी प्रकार का भय नहीं रहेगा। जितने भील-परिवार के स्त्री-पुरुष होंगे वे सभी आये हुए पथिक पाहुने की रक्षा करने मे जुट जायंगे। ऐक्य और प्रीति की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही थोड़ी है। जब दो भील परस्पर मिलते हैं तो बड़े प्रसन्न होते हैं और राम राम' कह कर एक दूसरे का स्वागत करते हैं। जिस प्रकार पाश्चात्य देशों में हाथ मिलाने की रीति है उसी प्रकार भीलों मे भी कन्धे पर हाथ रख कर परस्पर मिलने का रिवाज पाया गया है जब इन लोगों पर कोई भारी आपत्ति आ उपस्थित होती है तो ये सब एक सूत्र मे बँध कर उसका सामना करने को उद्यत रहते है। ऐसे अवसर पर ढोल बजा दिया जाता है जिसकी आवाज सुन कर सारे गाँव के भील किल्कारी करते हुए एक दम इकट्ठे हो जाते है फिर अपने मुखिया 'गमेती' के आदेश के अनुसार चलते है। प्रेम,

ऐक्य, संयम और सामुहिक भाव का इस प्रकार का संयोग दूसरी अन्य जाति में नहीं पाया जाता है। इनकी स्यामि-भक्ति के विषय में कर्नल-जैम्स टॉड ने लिखा है कि "दिल्ली के बादशाहों के साथ, मेवाड़ के राणाओं ने जो युद्ध किये उनमे वे (अर्थात्-राणा) अपनी तथा कुटुम्ब की शत्रुओं से रक्षा करने में इन वन-पुत्रों के वडे ऋणी थे। गुह, बापा और प्रताप की जो सहायता और सुरक्षा की है वह इतिहास प्रसिद्ध बात है। मरहट्टों के जमाने मे जब सिंधिया ने उदयपुर को घेर लिया था तव दीर्घ-काल तक नगर की सफलता पूर्वक रक्षा करने का श्रेय भीलों को ही मिला है क्यों कि ये लोग तालाब में होकर अवरुद्ध-नागरिकों के लिये भोजन-सामग्री पहुंचाया करते थे। उदयपुर राज-वंश-की ओर इस जाति ने पूरी स्वामि भक्ति दिखलाई है और अब भी यही बात है। डूंगरपुर, बॉसवाड़ा आदि राज्य के राजाओं के साथ भी इसी तरह इनकी स्वामि-भक्ति बनी रही है। इनके चिन्ह स्वरूप पहले राज्य मे तिलक भी भीलों के हाथ से हुआ करता था। अब यह प्रथा बंद है।

अवगुण—

भीलों के चरित्र पर पूरा प्रकाश डालने के वास्ते इनके कुछ अवगुणों की चर्चा करना भी आवश्यक है। इनमे ईर्षा और वैर, चोरी और लूट-मार, शराब-खोरी और फिजूल-खर्ची के अवगुण पाये जाते हैं। भील परस्पर प्रीति और सामूहिक भाव भले ही रखते हों किन्तु अक्सर इनमें डाह की भावना बनी रहती है। कभी

कभी ये लोग कहते है कि यदि हमारे घर और झोपडे जुदा-जुदा पहाड़ियों की टेकरियों पर नहीं होते और एक जगह बस्ती मे रहते तो आपस मे लड़-झगड कर मर जाते। भील अपना वैर वंश-परम्परा तक नहीं भूलते। यह कहावत मशहूर है "भील नो वैर उदेई न खाय" अर्थात् भील के वैर को दीमक नहीं लगता। बिना वैर का बदला लिये हुए भील नहीं मानता, यहाँ तक कि मरने के बाद भी उसकी आत्मा पुराने वैर को स्मरण करती है। चोरी और लूटमार परिस्थिति-वश सीखा है। रास्ता लूटना और चारी करना बुरा नहीं मानते। जब चोरी के अपराध मे पूछा जाता है तो ये जवाब देते है कि हमारा क्या अपराध है हम सदा से ही महादेवजी के चोर है। जब खाने को नहीं होता है तो अक्सर भील चोरी करता है— "भूख्यो भील चोरी करे"। लूट मार करने के वक्त यदि कोई मनुष्य यह कहे कि मुझे तकलीफ दिये बिना माल असबाब ले लो तो वह कहता है कि क्या मुझे खैरात (पुण्य) मे देता है। तीर, तलवार या पत्थर से थोड़ा बहुत जख्म पहुँचाये बिना लूट-खसोट नहीं करते। आज कल चोरी और लूट-मार करना कम पड़ गया है और खेती के धन्धे मे लगे हैं। सबसे बड़ा अवगुण मद्य-पान है। शराब इनका यदि दोस्त कहा जाय तो बेजा न होगा। हर धार्मिक व सामाजिक कार्य मे शराब पीने का रिवाज अनिवार्य है। इस दोष से इस जाति मे फिजूलखर्ची, कर्जदारी, गरीबी और बीमारी फैली हुई है। पहले की अपेक्षा शराबखोरी कम अवश्य हो गयी है लेकिन पूरी हटी नहीं है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि "दारू, दलदर, देना और दर्द (Drink, Dirt, Debt and Disease) ये चार 'द' इनके शत्रु है।

५ रहन-महन और खान-पान

जैसा भीलों का सादा स्वभाव है वैसा ही इनका रहन-सहन और खान-पान है। मोटा कपड़ा पहन कर और खोटा (Coarse) खाना खाकर जीवन बसर किया करते हैं बल्कि बाजवक्त यह भी पूरा मयस्सर नहीं होता। रहने के लिये कच्चे रद्दे के घर या पत्तों से छाई हुई झोंपड़ियाँ ही देखने मे आती हैं, जो पहाड़ी प्रदेश में ढालू जगह पर दूर दूर बनी हुई हैं। यूरोपियन बंगलों की भाँति इनके घर झोंपड़े नजर आते हैं। इस प्रकार दूर २ बसने का कारण परस्पर का ईर्षा-द्वेष बतलाते हैं, किन्तु बहुत करके यह समझ मे आता है कि भौगोलिक परिस्थिति से ही इस तरह से आबाद हुये हैं। पहाड़ी प्रदेश मे समतल भूमि कम होती है और कही कहीं है भी तो वहां पर बसने मे कई हानियाँ हैं जिसमे से मुख्य यह है कि आपत्ति के समय मे दुश्मनों से अच्छी तरह से सुरक्षा नहीं हो सकती।

घर :—

भीलों के घर प्रायः कच्ची मिट्टी के बने हुये होते हैं जिनकी छत घास व पत्तों तथा खपरेलों से ढकी जाती है। 'पालों' मे कही २ रद्दे (कच्ची ईंटों) और पत्थरों के भी मकान होते हैं लेकिन उनकी

तादाद बहुत कम है। इनका घर लम्बा २५ फीट, चौड़ा १५ फीट और ऊंचा ६ फीट से ज्यादा नहीं होता। घर के दरवाजे इतने छोटे होते हैं कि बिना सिर झुकाये कोई अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकता। खिड़कियां तो नाम के लिये भी ये लोग नहीं रखते हैं। घर के सामने ५-६ फीट दूरी पर बाँस की टट्टियाँ बाँध देते हैं जिससे उनका मुख्य द्वार देखने में नहीं आता। हवा और रोशनी ऐसे घरों में ढके हुये पत्तों और खपरेलों के छिद्रों में होकर ही आजा सकती है। अगर इनके घरों को 'सिंह की माँद', जैसा कि किसी ने कहा है, कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा। घरों के पास ही में कंटेदार झाड़ियों के बाड़े दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें भेड़ बकरियाँ रातको विश्राम करती हैं और घास का ढेर भी लगा रहता है। घर के एक भाग में इनके मवेशी अर्थात् गायें-भैंसे बँधी रहती हैं ताकि कोई चुरा न ले जायँ। यह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है क्योंकि इससे दुर्गन्ध और मक्खी-मच्छर फैलते हैं।

भीलों की झोंपड़ी में एक दो खटिया, कुछ मिट्टी के बर्तन, नाज पीसने की चक्की, बाँस का पलना और फटी पुरानी गुदड़ियों के अलावा और क्या मिलता है। हाँ अलबत्ता, खेती के औजार मसलन हल, फावड़ा, नली, कुदाली इत्यादि जरूर स्थान पाते हैं। किसी किसी घर में काँसी और पीतल के बर्तन मिल जाते हैं और कहीं कहीं पर नाज भरने की कोठियाँ भी होती हैं। दीवारें रंगीन

तरःीरों से सुसज्जित न होकर, नुकीले पर वाले रंगीन तीर और लम्बे कमान से सुशोभित होती हैं। घर के बाहर दरवाजे के निकट ही एक तरफ एक चबूतरी बनी होती है जिस पर पानी पीने के मटके एक दूसरे पर रक्खे हुये होते हैं। मैली कुचैली गोबर से रंगी हुई बाँस की टोकरियाँ, छतों के बाँस पर लटकी हुई रखते हैं और उनमें नाज भी किसी किसी वक्त भरा रहता है। वर्षा के दिनों में, इनके घर और झोंपड़े हरी भरी लताओं से लिपटे रहते हैं जो बड़े ही सुन्दर और सुहावने दिखाई देते हैं।

वस्त्र :—

भीलों के ओढ़ने बिछौने के बहुत कम वस्त्र होते हैं। वर्षा और गर्मी के दिनों मे खाट या जमीन पर ही बिना बिछौने के सो जाते हैं। सर्दी के दिनों मे फटी पुरानी गुदड़ियाँ काम में लाते हैं लेकिन कोई कोई लोग तो ऐसे दरिद्री होते हैं कि उनके पास ओढ़ने के लिये न होने से साड़ी या धोती को फैला कर नगे ही सो जाते हैं या खाट को उल्टा बिछा कर और पास में आग सुलगा कर लेट जाते हैं। कभी कोई मेहमान आ जाय तो दो मनुष्यों के बीच में एक खाट की व्यवस्था करना भी इनको मुश्किल हो जाता है। बहुत पुराने वक्त मे, भील पुरुषों के सिर पर शस्त्र प्रहार से बचने के हेतु लम्बे केशों का गुच्छा और बदन को ढकने के लिये वल्कल की कछनी होती थी। इसी तरह भील-स्त्रियों के भी घुटने तक वल्कल का ऊँचा लहंगा और हाथ पैरों में पीतल के वजनी जेवर

होते थे जिससे वे जंगलों मे साँप काटने से अपने को बचा लेती थी। आज-कल भील सिर पर पगड़ी या साफा, कमर तक गोटदार अंगरखी और घुटने तक ऊँची धोती पहिनते है। शहरों के सम्पर्क मे आये हुये भील कुर्ता, कमीज और कोट भी प्रयोग मे लाते है। जब कभी मेले और त्यौहार पर दूसरे गाँव जाने का अवसर आता है तो ये लोग लाल या आसमानी रंग की गोट लगी हुई नई अँगरखी और छोटा रंगीन रुमाल पहिन कर और हाथ मे तीर-कमठा तथा तलवार लेकर निकलते है। अच्छे कपड़े अगर न हुए तो पड़ौसी से माँग कर काम चला लेते हैं। भील-स्त्रियों के तीन वस्त्र मुख्य है— एक मोटी रगीन साड़ी (जिसको राजपूताना में 'लुगड़ा' और गुजरात मे 'साल्ला' कहते है) दूसरी कंचुली और तीसरा लहंगा। विवाहित स्त्री रग के और विधवा गहरा आसमानी रंग के वस्त्र प्राय' पहिनती है। क्वारी कन्या अपना विवाह न होने तक सफेद कंचुली ही पहिना करती है। भारत वर्ष मे प्रति मनुष्य १३ गज कपडे का औसत है जिसमे से गरीब भील की औसत सिर्फ ५ गज है।

आभूषण :—

भीलों के आभूषण चाँदी, पीतल, गिलट, राँगा, काँसा और जस्त के होते हैं। चाँदी के जेवर तो बहुत कम पाये जाते हैं और वह भी किसी किसी के पास। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के आभूषण अधिक होते है। पुरुष के कानों मे बालियाँ (जिसको राजस्थान

देवताओं का तावीज) हाथों में कड़े और कमर में करधनी होती होती है। किसी किसी के भुजा पर भुजबन्द भी होता है। स्त्री के शिर पर बोर, नाक में नथ, कानों में 'ओगनियां' (बालियाँ) गले में हंसली, हाँकली (साँकल नुमा कण्ठी) और मादलिये, हाथों में बाँह तक पीतल की 'गारणिया' (एक किस्म की चूड़ियाँ) और पैरों में घुटने तक 'पैंजनिया' (पीतल के कड़े) होती हैं। 'पैंजनियाँ' पीतल और काँसे की अंग्रेजी अक्षर W के शक्ल की होती हैं। राजस्थान में पैंजनियों की आवाज से बिना देखे हुए ही भीलनी की पहिचान हो जाती है। दक्षिणी राजपूताना में जहाँ सघन जंगल और ऊँचे पहाड़ हैं वहाँ की स्त्रियाँ घुटने तक तक पैंजनियाँ पहिनती हैं और मालवा, बूंदी, कोटा और पूर्वी मेवाड़ में इससे बहुत ही कम एक एक पैंजनी ही रखती हैं। गुजरात में घुटने तक आभूषण धारण करने का रिवाज नहीं है। कहीं कहीं भील-पुरुष गले में काले धागे की कण्ठी और लाल मूँगे की माला का भी शौक रखते हैं। विधवा स्त्री का जेवर सिवाय हाथों की तीन-चार काँसे की चूड़ियों के और कुछ नहीं होता। भीलों में और प्रायः आदिम जातियों मे गोदने का रिवाज देखा गया है। स्त्री और पुरुष, अपने शरीर के दिखावटी भाग पर भांति-भांति के फूल-पत्ते, जानवर व अन्य प्रकार की आकृतियाँ गुदवाते हैं।

भोजन—

भीलों के खाने का खास पदार्थ मक्का, जवार, जौ और जंगली नाज होता है। गेहूँ, चाँवल, माँग वार-त्यौहार व जातीय-

भोज के अवसर पर ही नसीब होता है। जंगली नाज मे मुख्य माल, चट्टी, कूरी, कोदरा और सामा है जो कई वर्षो तक पड़ा रहने पर भी नहीं बिगड़ता। दुष्काल मे यह निकृष्ट नाज भीलों को जीवित रखने के लिये बड़ा काम का है। नाज की रोटियाँ बना कर नमक-मसाला और छाछ (मट्ठा) के साथ खाते हैं। मक्का का दलिया छाछ के साथ पका कर भी काम मे लाते है। इसको राजपूताना मे 'राब' कहते हैं। हरो साग-भाजी और दाल कभीकभी मिल जाती है। इनके फल-फूल जंगल के बेर, खजूरे और महुए हैं जिनको बडी रुचि के साथ खाते हैं और बाजारों मे बेचने के लिये भी लाते हैं। कहीं कहीं भील प्रदेश में आम भी हैं जिनकी गिनती भी फल-फूलों मे आ सकती हैं। मछली और मुर्गी का माँस खाते हैं। पहले गाय, भैंसा, बकरा का माँस खाया करते थे, लेकिन अब यह रिवाज नहीं है। जयसमुद्र (मेवाड़) के कालिये भील मगर का माँस खाने मे संकोच नहीं करते और सूअर का माँस भी प्रयोग मे लाते हैं। माँस के साथ मुख्य पेय मदिरा है जिसके बिना जातीय-भोज अधूरा समझा जाता है। लड़ाई-झगड़ों का आदि और अन्त मद्य-पान से होता है। त्यौहार, विवाह-शादी में, दाल बाटी, लपसी (मीठा दलिया) चूरमा (सेके हुए आटे के मीठे लड्डू) घूघरी (उबाला हुआ मक्का और गेहूँ) अक्सर होती है जो बराबर बराबर सबको बाँट दी जाती है। घी का उपयोग जातीय-भोज मे नहीं होता। यह इस जाति के लिये मना है। एक बार किसी भील ने घी का बना हुआ दलिया बनाया जिसको जाति के लोगों ने तिरस्कृत कर नहीं खाया।

स्वास्थ्य और सफाई–

रहन-सहन और खान-पान का वर्णन करते हुए तनिक इनके स्वास्थ्य और सफाई की ओर भी दृष्टिपात करना अप्रासंगिक न होगा। जगलों और पहाड़ों की ताजा हवा और धूप की कमी नहीं है और यह तन्दुरस्ती के लिये फायदेमन्द भी है किन्तु पौष्टिक पदार्थ न मिलने से और सफाई पर ध्यान न देने से, भीलों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं कहा जा सकता। वे दूध और घी सेवन नही करते। ये इनके लिये महँगी वस्तुएं हैं। जानवरों का माँस तो कभी होली-दिवाली या वार-त्यौहार मिल जाता है। यही पौष्टिक पदार्थ गिनना चाहिये। सफाई का यह हाल है कि मरे हुए जानवरों का चमड़ा न निकाल कर योंही घरों के वाहर डाल देते हैं जिससे सड़ी बू आती है! मनुष्यों के रहने के घर में पशुओं के वाँधने से वदबू और वीमारी फैलती है। इसी प्रकार घर और मकानों में हवा के लिये सूराख न होने से और सफाई नहीं रखने से कई हानियाँ हैं। ये छान कर पानी नहीं पीते। कच्चे कुओं का पानी जिनमे वारिश का कूड़ा करकट भरा रहता है, इस्तेमाल मे लाते हैं। नहाने धोने का भीलों मे कम शौक है। महीने मे एक वार भी मुश्किल से नहाते हैं। इनका शरीर मैला रहता है और कपड़ों में जुएँ रेंगती हैं। पाखाना जाने के वाद कुछ भील हाथ में पानी भी नहीं लेते।

इन सव कारणों से इस जाति में पेट-दर्द, कब्ज, नेहरु, जलोदर कोढ, दाह, तिल्ली, दम, क्षय और मलेरिया आदि रोग फैले

हुए हैं। रोगों से बचने के लिये या तो भैरव, हनुमान, भवानी आदि देवी-देवताओं के स्थान पर जाकर मिन्नतें करते हैं या जंगल की जड़ी बूटी का सेवन करते हैं। अस्पताल की दवाई लेने में संकोच नहीं करते हैं लेकिन देशी दवाखानों की संख्या भील प्रदेश में बहुत ही कम है। अंधविश्वास और अज्ञानता मिटे बिना स्वास्थ्य और सफाई की ओर इनका ध्यान नहीं पहुंच सकता। नि सार और निकृष्ट भोजन, फटे पुराने और मैले वस्त्र तथा अस्वास्थ्यकर घरों और मकान की हालत देखते हुए इनका खान-पान और रहन-सहन बहुत ही गिरा हुआ है। यदि यही हाल रहा तो यह जाति अपनी गिरि हालत से नहीं सम्हल सकती। यदि ये खेती मे होशियार बनें, धन्धे सीखे व मजदूरी करने मे दक्ष बने तो इनकी आर्थिक स्थिति सुधर सकती है और आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर ही स्वास्थ्य और सफाई का स्तर भी सुधर सकता है।

६ पेशा और उद्योग

चोरी और लूटमार

चोरी और लूटमार भीलों का आदि व्यवसाय रहा है। सैकड़ों वर्षों से अपने जीवन निर्वाह का यही साधन बना रहा है। इस काम में बुराई नहीं समझते हैं। इनका यह विश्वास है कि ईश्वर ने इनको इसी हेतु बनाये है। इनका आदि पुरुष स्वयं महादेवीजी के वृषभ चुराने वाला था। इस कार्य को ये लोग बड़े गर्व, हिम्मत और बहादुरी से करते है। चोरी और लूटमार करना अब

इन्होंने बहुत कुछ छोड़ दिया है। कहीं कहीं भील प्रदेश मे मवेशियों की चोरियाँ हुआ करती हैं। मवेशियों का अपहरण करके भील कोसों दूर निकल जाते हैं और बेच आते हैं। जहाँ पर इन्हीं लोगों की चोकीदारी है वहाँ पर चोरी बहुत कम होती है क्योंकि चोरी होने पर यदि चोर का पता न लगा तो ये ही जिम्मेदार ठहराये जाते हैं। चोर का पता लगने पर उसको राज से दण्ड मिलता है।

खेती—

आजकल भील जहाँ कहीं आबाद हैं वे खेती के धन्धे मे लग गये है। इनकी खेती अच्छे ढंग की नहीं कही जा सकती जिसके कई एक कारण हैं। इनके पास न तो उपजाऊ जमीन है और न इनको खेती का अच्छा ज्ञान है। पहाड़ों के बीच में मगरीली और पथरीली, मैदानों में गांवों से दूर ऊसर जमीन इनको मिली है। कुए अधिक संख्या मे नहीं है और जो कुए है वे भी अच्छे पक्के बने हुए नहीं हैं वे भी अच्छे पक्के बने हुए नहीं हैं। खाद को हिफाजत से गड्ढे में रखना नहीं जानते। खेतों पर ढेर के ढेर लगा देते है जिससे खाद का असली तत्त्व सूर्य के ताप से नष्ट हो जाता है। खेती करने के औजार भी इनके पास नही मिलते। अन्तिम कारण खेती खराब होने का यह है कि ये कई वर्षों से चोरी-एक आजाद पेशा-करते हुए आ रहे है इसलिये मेहनत करने के भी आदी नहीं हैं। एक बार बीज बो देने के बाद निगरानी और देख रेख पूरी नहीं करते। जो माल पैदा हो गया वह किस्मत का है। खेती तालाब और कुओं पर अच्छी देखने में आई है। जहां पानी की बहुतायत है वहाँ पर चाँवल और ईख

की काश्त होती है, बाकी मामूली जिन्स मक्का, जौ, जवार होती है। जगलों और पहाड़ों में एक विशेष प्रकार की खेती होती है जिसको 'बज्जर' कहते हैं। इस तरह की खेती छोटा नागपुर की आदिम जातियों मे भी 'भूम' और 'ढाही' के नाम से पुकारी जाती है। 'बल्लर' का यह तरीका है कि पहाड़ों के ढालू जगह मे दरख्त काट कर बिछा देते हैं और फिर इनको जला कर राख कर देते हैं जो खाद की तरह काम देता है। इसमें निकृष्ट नाज कोदस माल, बट्टी इत्यादि बोते हैं।

पशु-पालन—

खेती के साथ पशु-पालन भी भीलों का पेशा है। मवेशी को ये अच्छी सम्पत्ति समझते हैं। नकद रुपयों को पशु धन मे परिणित करने की इच्छा रखते हैं। मवेशी को ये लोग 'लक्ष्मी' कह कर पुकारते हैं। मामूली भील गृहस्थ के घर मे २० से लेकर ५० तक भैंस, गाय, भेड़, बकरे मिलते हैं। इनके मवेशी इनके माफिक नाटे और दुबले पतले होते हैं। यद्यपि जंगलों और पहाड़ों में घास बहुत होता है लेकिन पौष्टिक पदार्थ नहीं होते। घास भी अधिक तर शहर मे जाकर बेच आते हैं जिससे मवेशियों के लिये पर्याप्त नहीं बचता। जो मवेशी बीमार पड़ जाते हैं उनकी चिकित्सा झाड़ा-फूंका और जादू-टोना के सिवाय और नहीं समझते। इसका परिणाम यह हो रहा है कि नस्ल कमजोर होती जा रही है और पशु-पालन करना फायदा मन्द नहीं पड़ता। जो दो चार रोज का घी इकट्ठा हो जाता है वह छोटी काली हँडिया

में भरकर बाजार में बेच आते हैं। भेड़ से ऊन लेकर भी लाभ उठाते हैं।

मजदूरी–

मजदूरी भीलों का मुख्य पेशा है। भील स्त्री और पुरुष जंगलों और पहाड़ों मे घास लकड़ी और बॉस काटने जाते हैं और आस पास के शहर तथा कस्बों में बेंच आते हैं। इससे इनका अच्छा गुजारा चल जाता है, लेकिन ये पैसा अधिकतर शराब पीने में गवॉ देते है। गोंद, धोली-मूसली, शहद तथा अन्य जंगल की जड़ी-बूटियॉ भी संग्रह कर पैसा कमाते है। ये शहद निकालने में भी बड़े चतुर होते है। धुआँ करके पुराने ढंग से ही शहद निकालते हैं। सिर पर भारी बोझ लेकर पहाड़ों की चोटियों पर आसानी से चढ जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये रक्षक, मार्ग-दर्शक, और संदेश-वाहक का भी काम करते हैं। पहाडों और सघन वनों में भील तीर कमान और बन्दूक लिये हुए यात्रियों की रक्षा के लिये थोड़े से मेहनताने पर साथ हो जाते है। खेतों में जहॉ खड़ी फसल होती है, उसकी रक्षा भी ये लोग किया करते हैं। गोफन और बन्दूक ले कर रात को खेतों पर चले जाते है और पक्षी तथा जंगली जानवरों को डरा भगाते हैं। मार्ग बतलाने मे ये बड़े कुशल समझे जाते है। इनको जहॉ मार्ग बतलाने के लिये आगे कर दिया फिर कहीं गुम होने का भय नहीं रहता। राजस्थान मे पुराने समय से भील पत्र पहुंचाने का काम करते आये है।

शादी गमी और जरूरी मौके पर कई कोसों तक पत्र लेकर जाते हैं और तुरन्त इसका जवाब ले आते हैं। शहरों और कस्बों के आस पास के भील इमारती काम पर भी मेहनत-मजदूरी करते हैं।

चौकी-दारी-

पहाड़ी प्रदेश मे सड़कों और रास्तों पर कई जगह भीलों की चौकियाँ हैं जहाँ पर भील चौकीदारी का काम करते हैं। हर एक चौकी पर आस पास की 'पाल' और 'फले' के भील बारी बारी मे १५-२० की संख्या मे आकर दिन रात मुसाफिरों की रक्षा के निमित बैठते हैं और चौकी जिसको 'बोलावी' भी बोलते हैं, वसूल करते हैं। प्रति मनुष्य एक आना और प्रति बैलगाड़ी ॥) आठ आने के लगभग लेते हैं। इसके बदले दूसरी चौकी तक सही सलामत पहुँचाने की जिम्मेदारी लेते हैं। यदि दूसरी चौकी आने तक कहीं माल असबाब लूट लिया गया तो उसका हर्जाना ये चौकीदार देते हैं। मेवाड़ और डूँगरपुर में 'बोलावी' की प्रथा देखी गई है। जो इक्के-दुक्के भील मैदानों मे गाँव के बाहर आबाद मिलते हैं, वे गाँव की चौकीदारी अक्सर किया करते हैं। चोरों से रक्षा करने का काम इनका है। रात को तलवार, बन्दूक लेकर गाँव में चौकी-पहरा दिया करते हैं। कहीं कहीं इनको इस खिदमत के बदले में माफी (कर रहित जमीन) मिली हुई है और कहीं कहीं पर मुकर्ररा मेहनताना दिया जाता है।

नौकरी :—

भील स्वभाव से नौकरी करना पसन्द नहीं करता। परिस्थिति-वश इन्होने यह पेशा भी इख्तियार कर रखा है। कर्जदारी के मारे बनियों के नौकर रहते हैं। जब तक कर्जा अदा नहीं होता तब तक ये बनिये के घर पर पशु-पालन करने, घर की सफाई करने, खेती-बाड़ी करने मे रहते हैं और गुजर के वास्ते बनिये इनको रुखी-सूखी रोटी और फटे पुराने कपड़े दे देते हैं। इस प्रथा को राजस्थान में 'सागड़ी' कहते हैं। इस तरह की नौकरी को छोड़कर जहाँ जोखम उठाने और जान पर खेलने की नौकरी होती है उसको सहर्ष स्वीकार करते है। कई भीलों ने खेरवाड़ा (मेवाड़) और खान देश मे 'भील कॉर' मे सिपाही का काम किया है। अपने कर्तव्य के पूरे पाबन्द और सच्चे होते है। सन् १९१४ ई. के महा-युद्ध मे ये अपने अपने अधिकारों पर बड़े दृढ बने रहे थे। हिंसक पशुओ के शिकार कराने के लिये भी ये लोग नौकर रखे जाते थे। मेवाड राज्य मे ऐसे नौकरों को 'नौकरिया' कहा जाता था। इन नौकरियों की खास वर्दी होती थी। गहरा पीला रंग का साफा और उसी रग का कोट तथा चमड़े का कमर वेल्ट होता था और हाथ मे बल्लम (भाला) रहता था। पहाड़ो के दर्रों मे दो तीन कतारो मे खड़े होकर सारा जंगल घेर लेते हैं और फिर सिंह का शिकार अच्छी तरह कराते है।

आखेट और धीवर कर्म :—

आखेट कराने के अलावा ये स्वय भी आखेट करते हैं और इस

काम में बड़े दक्ष होते हैं। आखेट अपनी उदर-पूर्ति के लिये ही नहीं बल्कि मनोरंजन के वास्ते भी करते हैं। बाघ जब तक मनुष्य का घाती नहीं बने, ये लोग नहीं सताते, बल्कि बड़े आदर सन्मान से रखते हैं। यदि मनुष्य को मारने लगे तो पंचायत करके उसके दोष को निश्चय करके मारते हैं और लोथ को मार्ग के समीप दरख्तों पर लटका देते हैं जिससे सब दुष्ट बाघों को चेतावनी मिले। भाले से भालू का और तीर से मछली का शिकार करने में भी बड़े प्रवीण हैं। शिकार का ढंग यह है कि ज्यों ही भालू अपने दुश्मन जानवरों का पीछा करता है और टाँगों पर खड़ा होकर झपटता है त्यों ही काँटों की बनी हुई टट्टी को उसकी छाती में भोंक देते हैं। जब बाल और पैर काँटों में फँस जाते हैं तब भाला भोंक कर मार डालते हैं। मछली का शिकार करते हैं तो एक चट्टान के पास बैठ कर तरकस के, तीर के नुकीले हिस्से को रस्सी से बाँध कर पानी में लटका देते हैं जैसे ही बड़ी मछली लपकती हुई दौड़ कर उसके पास आती है वैसे ही ये तीर से उसको बींध देते हैं। छोटी मछलियों को बहते हुए पानी में थूहर का दूध डाल कर और पानी का रास्ता बन्द करके मार डालते हैं। जय-समुद्र (मशहूर ढेबर) झील में 'भेला' (दो चार लट्ठों को शामिल बाँध कर पानी से पार जाने को बनाया जाता है) पर बैठ कर लम्बे लम्बे भाले हाथ में लिये हुए भील स्वतन्त्रता-पूर्वक मगर की शिकार में इधर-उधर घूमते रहते हैं। मगर की शिकार में कम से कम दो आदमी रहते हैं। बल्लम का फल

उसके साथ रस्सी से बॉध देते हैं और जब यह फल किसी मगर या बड़ी मछली के विशाल शरीर में घुस जाता है तब इसका अग्र-भाग हाथ से छोड़ दिया जाता है ताकि वह तैरती रहे और मरने तक दूसरा पुरुप अपने भाले से पीछा कर सके।

उद्योग-धन्धे :—

भील मामूली बॉस की लकड़ी का काम, टोकरी, खाट, खजूर के पत्तों के पखे, चटाई और झाड़ू बनाना जानते हैं। इसके अलावा जरूरत की चीजे भी ये लोग स्वयं बना लेते हैं। दूसरे हूनर वालों पर निर्भर नहीं रहते है। मिट्टी के बरतन के लिये कुम्हार पर और अपने वल्लम और तीर के फल के लिये लुहार पर अलबत्ता जरूर निर्भर रहना पड़ता है, बाकी सब काम अपने हाथों से करते है। घर को ढकने के वास्ते खपरैल भी स्वयं ही तैय्यार करते हैं। महुओं से शराब निकालने की तरकीब भी इनको याद है। चूने की भट्टी पकाना भी ये जानते है। आज -कल कातना बुनना भी इन लोगों को भील सेवा मंडल दाहोद (पच महान) में सिखाया जाता है तथा अन्य व्यवसाय भी।

७. रीति-रिवाज

जन्म संस्कार :—

भीलों के रस्म रिवाज में अधिकतर अन्ध विश्वास और आमोद-प्रमोद भर हुआ है। वीरता की झलक भी कहीं कहीं पाई जाती है। मद्य-पान और नृत्य-गान प्रायः हर रीति-रिवाज के साथ अनिवार्य

है। सभ्यता से दूर रहने से इनकी पुरानी प्रथाएँ ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। थोड़ा बहुत हेर-फेर जरूर हुआ है लेकिन अभी तक विशेष अन्तर नहीं आया है। हमारे देश मे जन्म-संस्कार, विवाह-संस्कार और मृत्यु-सस्कार ये तीन संस्कार मुख्य माने जाते हैं। भील इन सस्कारों पर क्या रस्म और रीति पालते हैं? इसका अध्ययन बड़ा मनोरंजन और कौतूहल-मय है। पहले जन्म-संस्कार से ही चलते हैं।

जन्म :—

जब भीलनी प्रसव-काल मे होती है तब उसकी सेवा माता या बहन या सास करती है। बच्चा पैदा होने पर नाल काटी जाती है जिसको अक्सर देवर घर के बाहर गाड़ता है। दाई भीलों मे नहीं होती। दाई का काम भील स्त्रियाँ ही करती है। जन्म की सूचना ढोल द्वारा अड़ौस-पड़ौस मे पहुँचाई जाती है। जोगी या कोई अन्य पुरुष भी गाँव मे फिर कर खबर देता है। सूचना मिलने पर सगे सम्बन्धी और पड़ौसी एकत्रित होते है और इच्छा-नुसार भेंट लाते है। कहीं भील प्रदेश मे इस मौके पर 'कामरिया' यानि भाट भी आता है जो घर की देहली पर एक नकली घोड़ा रख कर सीतला माता की स्तुति करता है। नवजात शिशु की रक्षा के निमित प्रसूता-स्त्री के बिस्तर मे एक तीर रखते है। पाँच रोज बाद 'सूर्य-पूजन' होता है। प्रसूता-स्त्री अच्छे-वस्त्र पहन कर हाथ मे तीर लिये हुए सूर्य-भगवान की तरफ मुंह करके बैठती है और बच्चे को आशीर्वाद के हेतु प्रार्थना करती है। उस दिन

'रावड़ी' (मट्ठे में उबाला हुआ मक्का का दलिया) और हरा (शराब) प्रयोग में आता है। नाम-करण संस्कार बच्चे के पैदा होते ही होता है। इस अवसर के चूकने पर बच्चा जब चलने-फिरने योग्य हो जाता है तब किया जाता है। भीलों में बच्चों के नाम ब्राह्मण नहीं देते क्यों कि ब्राह्मण भील प्रदेश में विरले ही होते हैं। बच्चे की बुआ या मामा बच्चे का नाम वार देख कर देते हैं जैसे लड़का या लड़की दीतवार को हुई तो उसका नाम दीता या दीती रखा जाता है। रात - दिन व्यवहार में आने वाली और प्राकृतिक वस्तुओं पर भी नाम रखे जाते हैं जैसे मेघा, वंशी, धनु, केशर इत्यादि। जन्म से दो-तीन महीने बाद केश काटने का दस्तूर होता है। जिनकी सन्तान जन्म के थोड़े ही दिनों के बाद मर जाती है वे लोग यह दस्तूर न कर दूसरा दस्तूर करते हैं जिसको भीली-भाषा में 'गदर सोटियो' कहते हैं। इस रिवाज के अनुसार किसी देवी या देवता के 'झडूला री बोलमा' बोली जाती है अर्थात् बच्चे के केश एक अवधि तक नहीं काटे जाते है और अवधि समाप्त होने पर उस देवी या देवता के स्थान पर जा कर भेंट चढा कर फिर केश काटे जाते हैं। इस प्रथा से किसी-किसी बच्चे के दो या तीन चोटियाँ रखी जाती हैं।

जन्म के बाद :—

जन्म के बाद पहली दीवाली पर यह रिवाज है कि घर के बाहर मक्का का ढेर लगा दिया जाता है और उसके बीच में एक लम्बा

बॉस गाड़ देते हैं। बॉस पर बच्चे की मॉ लहंगा बॉध कर उलटा लोटा लटका देती है। फिर मक्का के ढेर और बॉध को छोटे-छोटे दीयों से सजाते हैं। बालक की बुआ अँगरखा, अँगोछा, टो , कोड़ियॉ और हसली आदि वस्त्राभूषण पहनाती है और बच्चे को अपने पास लेकर सेमर वृक्ष के सात बार फेरा फिरती है। बालक का पिता अपनी बहन को इस अवसर पर कुछ वस्त्र देता है। बच्चे का मामा भी इस मौके पर अपनी बहन और बहनोई को वस्त्र अर्पण करता है। साले औ बहनोई मे उपहार प्रत्युपहार होता है। उसके बाद ही जब होली का त्योहार आता है तब 'ढूंढ' करने की रीति है। लड़के का मामा कुछ कपड़े थोड़ी सी शराब और एक बकरा लिये हुए अपनी बहन के घर आता है। शराब का घूंट बच्चे के मुह मे डाल कर वस्त्र अपनी बहन को भेंट करता है। लड़के का पिता इस दस्तूर होने के बाद दावत देता है।

अन्य जातियों की तरह, भीलों मे भी पुत्री क बनिस्पत पुत्र की चाह अधिक होती है। पुत्र के जन्म होने पर बड़ी खुशी मनाई जाती है। जिसके पुत्र न हो वह दम्पति अपना मनोरथ सिद्ध करने के वास्ते किसी देवता के सम्मान मे 'नवेलो' नाम का सस्कार सम्पादित करता है। जन्म से लेकर बारह वर्ष तक भील बालक की भुजा तथा कलाई पर तपाये हुए लोहे का चिन्ह अकित करते हैं। इसके बारे मे भीलों का यह विश्वास है कि अगर किसी के यह चिन्ह न हो तो मरने के बाद भगवान के द्वार पर पहुँचते ही दण्ड मिलता है और उसके लिये स्वर्ग का द्वार बन्द रहता है।

डूँगरपुर राज्य के भीलों में इस रिवाज के बारे में यह माना जाता है कि इससे बालक में दूर तक दौड़ने की शक्ति आती है।

विवाह-संस्कार–

विवाह भीलों मे एक प्रकार का लौकिक कौल है जो बिना 'दापा' के पूरा नहीं होता। 'दापा' वह रकम है जो भील-पंचायत में तय हो कर कन्या के बदले में दी जाती है। दापा की रकम ८०) रुपये से लेकर १२०) रु० तक और कहीं कहीं इससे भी ज्यादा ठहरती है। दापा कन्या के बाप को मिल जाता है, उसके बाद वह अपनी लड़की की शादी दूसरी जगह नहीं कर सकता यदि ऐसा किया तो दापे की दुगुनी रकम हर्जाने के तौर पर ली जाती है।

विवाह कितनी प्रकार का होता है–

दापे की प्रथा से बड़ी उम्र तक भीलों मे शादी नहीं होने पाती। साधारण अवस्था लड़के की शादी की १७ वर्ष और लड़की की १३ वर्ष की होती है। दापे की कुप्रथा से भीलों मे छ: प्रकार के विवाह प्रचलित हुए है जिनमें साधारण रस्म-रिवाज की दरकार नहीं है। ये छ: प्रकार के विवाह निम्न लिखित है —

(१) 'कलाई पकड़ना'–जब लड़की अपने योग्य वर खोज लेती है और दोनों परस्पर सम्बन्ध करने को राजी हो जाते है तो किसी मेले या उत्सव पर वर कन्या की कलाई पकड़ लेता है और यह बात कन्या अपने माँ-बाप को जाकर कहती है। इस पर वर

और कन्या के माँ-बाप उनका विवाह कर देते है। कभी कभी लोभ वश इन्कार भी कर देते हैं और यह मामला पंचायत मे तय किया जाता है इस तरह के विवाह मे कन्या को अपने योग्य वर ढूँढने का अधिकार है।

(२) नदी पार करना—जब युवक-युवती एक दूसरे को पसन्द कर लेते है तो ये नदी पार कर दूसरे किनारे पर चले जाते हैं और उनका विवाह हो जाता है। यदि युवती कन्या का बाप नदी पार करने के पहले उनको पकड़ लेता है तो विवाह नहीं होने पाता। इस विवाह में वर कन्या को कुछ स्वतन्त्रता है।

(३) चुपचाप भागना—यदि युवती कन्या किसी युवक के साथ भाग जाय या ऐसा प्रयत्न करे और कन्या के पिता या भाई को इसका पता लग जाय तो बड़ा झगड़ा होता है। इस किस्म के झगड़े मे कभी २ घरबार जला दिये जाते हैं। झगडे का निपटारा पंचायत से 'दापा' के रूपये आने पर हो जाता है। निपटारा हो जाने बाद एक छोटा सा गड्ढा खोदा जाता है उसमें जल भर कर कन्या का पिता और कन्या का प्रेमी उसमे पत्थर डालते है जिससे फैसला पक्का हो जाना माना जाता है। यदि युवक, युवती कन्या को चाहता है और कन्या उसके चाहने पर भी साथ भागने से इन्कार कर देती है तो वह युवक उस गाँव मे यह कहता है कि मैंने अमुक कन्या के साथ विवाह सम्बन्ध कर लिया है इसलिये जो उसके साथ विवाह करेगा परमात्मा उसका बुरा करेगा।

(४) घर जवाँई–जिस भील के पास दापा चुकाने की हैसियत न हो और गरीबी हालत हो तो वह कन्या के बाप के घर रहने लग जाता है और उसके घर का काम करता है। कन्या के साथ उसके पुत्र की गाढी मित्रता हो जाती है और वे फिर स्त्री पुरुष की तरह रहने लग जाते है इस तरह के विवाह मे कोई रीति-रस्म नहीं होते। यह प्रथा अन्य हिन्दू जातियों मे भी पाई जाती है।

(५) 'हाई राखवी'–अर्थात् पकड़ कर रखना–जिस भील युवक के पास विवाह करने के वास्ते रुपया पैसा नही होता है और कन्या बड़ी उम्र की हो गई है या अच्छी है तो वह युवक उस कन्या पर दृष्टि रखता है और अवसर देख कर अकेले मे उसे पकड़ लेता है और उसके साथी उस कन्या को कन्धे पर विठा कर युवक के घर ले आते हैं और वहाँ पर एक दो रोज रख कर उबटन लगाने के बाद उसके साथ पाणि-ग्रहण हो जाता है। गाँव में भोज होता है जब यह समाचार कन्या के बाप या भाई को मालूम होता है तो वह अपने गाँव के लोगों को साथ लेकर धावा करने आता है जिनको वर-पक्ष वाले शान्त करते है। फिर 'बूहा गोठ' एक किस्म की दावत की जाती है। कुछ दिन बीतने पर वर का बाप 'हेरा' (शराब) लुगडा (साड़ी) और दो बकरे लेकर कन्या के घर रखने के लिये जाता है और परस्पर सम्बन्धियों में मेल-जोल हो जाता है। इस रिवाज को 'लकरुँ भाजणुँ' (झगड़ा मिटाना) बोलते है।

(६) 'आई पेमतुं'

यानि आकर घुस जाना— यदि कन्या की सगाई हो चुकी हो और शादी करने में देरी हो या सगाई छोड़ने का इरादा हो या कन्या के घर में उसको कोई दुःख देता हो या कन्या बड़ी उम्र की हो गई हो तो वह 'वड़ हाली' (सगाई कराने में प्रमुख मनुष्य) के घर पर चली जाती है। वड़ हाली इस बात की सूचना वर के बाप को देता है और सूचना मिलने पर वर का बाप कन्या को अपने घर पर ले आता है। कन्या के उबटन लगा करके पानी भराने का दस्तूर होता है और कन्या को वहाँ रख लेते हैं। कन्या के स्वयं आने के कारण कन्या का पिता दापा के वास्ते जल्दी नहीं कर सकता और न धावा करके ही वर पक्ष पर आता है। इस रिवाज से दापा देने में ढील पड़ जाती है यहाँ तक कि दो-चार बाल-बच्चे हो जाने पर दापा की रकम दी जाती है।

सगाई :—

जब विवाह साधारण रीति से सम्पन्न होता है तो सबसे प्रथम 'सगाई' (Betrothal) की जाती है। सगाई करने के लिये लड़के का बाप लड़की की तालाश में जाता है। अन्य हिन्दू जातियों में लड़की का बाप लड़के की खोज में रवाना होता है। लड़के के बाप को जब किसी भिन्न 'अड़ख' (गोत्र) की लड़की का पता लग जाता है तो वह सगाई की बात-चीत गाँव के गमेती (मुखिया) या किसी सम्बन्धी के द्वारा कराता है। इस तरह बीच में रह कर बात-चीत करने वाले को 'वड़ हालो' कहते हैं। बात-चीत होने पर

यदि सगाई निश्चय हो जाती है तो वर का पिता दो-चार रोज बाद अच्छे शकुन देख कर कुछ आदमियों को साथ लेकर जाता है। क्वांरी कन्या व पत्ती का शुकुन बहुधा भील लोग लेकर गॉव से बाहर निकलते है। फिर वड़ हाली के घर पर आकर यह बात कही जाती है कि हमको अच्छे शकुन हुए हैं इसलिये सगाई करने के लिये आये है। बड़हाली उनको कन्या के घर पर ले जाता है जहाँ पर कन्या के गुण दोष पर विचार होता है। यदि कन्या पसन्द आजाती है तो वर का बाप शराब मॉगता है और शराब की धार देकर वर और कन्या पक्ष के लोग जो वहाँ पर होते हैं यह कहते है "लाड़ी (कन्या) और वर का भला होना"। इसके बाद वर का बाप कन्या के बाप के सन्मुख आकर बैठ जाता है और दोनों हाथ पकड़ कर अञ्जलि मॉडता है इस वक्त यह कहा जाता है "इस लाड़ी का हरा पीया, इसलिये आज से यह लड़की हमारी हुई और तुम दापे के धणी (हकदार) हुए"। दूसरी बार कन्या का बाप इसी तरह अञ्जलि मॉड कर बैठ जाता है और वर का बाप शराब डालता है। और कन्या का बाप उस समय ये शब्द बोलता है "कन्या आज से तुम्हारी हुई और मैं दापे का धणी हुआ"। इस प्रकार वचन प्रतिवचन हो चुकने पर दोनों पक्ष वाले लोग शराब पीकर अपने अपने घर चले जाते है। मेवाड़ मे ऐसा सुना जाता है कि इस अवसर पर कन्या को पाट पर बिठा कर एक पैसा और एक रुपया उसके हाथ मे देकर चॉवल उछाले जाते हैं।

दापे का रिवाज—

सगाई होने के थोड़े दिनों बाद, दापे का दस्तूर होता है। वर का बाप दो चार मनुष्यों को लेकर कन्या के घर जाता है। दापा की रकम घर के बाहर किसी वृक्ष की छाया में बैठ कर तै की जाती है जिसमे गॉव के पंच एकत्रित होते हैं। दापा दो प्रकार का होता है सबसे बढ़िया 'सोलह' का और साधारण 'सवा चौदह' का जिसको 'रिवाज' भी कहा जाता है। बढ़िया दापा देने वाला बढ़िया भोजन (चॉवल और पाड़ा) और मामूली दापा देने वाला मामूली भोजन (घूघरी और बकरा) विवाह के अवसर पर करता है। राजपूताने में आज-कल आम तौर से ३०) रु० से लेकर ५०) रु० तक और गुजरात मे ६०) रु० से लेकर ८०) रु० तक दापा लेने का तरीका है। दापे की रकम निश्चित होने पर सब लोग कन्या के घर के ऑगन मे आते हैं और वहाँ पर कन्या की बहन वर के बाप या भाई के सन्मुख चॉवल, दहीं और कुंकुम की थाल लेकर आती है और उनके तिलक करती है। कन्या को पाट कर बिठा कर उसकी साड़ी के पल्ले में चॉवल और रुपया रखा जाता है और हाथ पर छिड़ वाली फूँदी बॉधी जाती है। फिर वर का बाप रुपया रखता है और कन्या शराब की धार देती है। कन्या, वर का बाप गाय, भैंस या बकरी देने का वचन मुँह से न कह दे तब तक पाट से नहीं उठती। आखिर मे, सब लोग शराब पीते हैं, दाल चॉवल और घूघरी खाते है और खूब मस्ती के साथ नाचते कूदते हैं।

सगाई छोड़ना—

सगाई होने के बाद यदि वर के बाप के पास रुपया देने के लिये न हो वर को कोई असाध्य रोग लग गया हो तो सगाई छूट जाती है। पुराने समय मे सगाई छोड़ने का दस्तूर पीपल के दो चार पत्तों को पत्थर पर रख कर उन पर जल छिडकने से किया जाता था। आज कल दोनों पक्ष वाले लोग सगाई का सम्बन्ध विच्छेद करने का कागज परस्पर लिखवा देते हैं।

विवाह की तैयारी—

सगाई और दापा का दस्तूर हो जाने के बाद विवाह का शुभ मुहूर्त ब्राह्मण से पूछते हैं। जो दिन विवाह का निश्चित होता है उसके कुछ दिन पहले विवाह का कार्य आरम्भ हो जाता है। जिस घर में विवाह होता है उस घर मे सुइयों द्वारा छेदी हुई मिट्टी की पुतली रखते हैं जिसको 'दढी' कहते है। कन्या पक्ष की ओर से गुरु के साथ उबटन (पीठी) वर के घर भेजा जाता है जिसके बदले मे वर का पिता नवदम्पति के लिये वस्त्र प्रदान करता है। दोनो सम्बन्धियां क बीच फूलों और जागरी (दाने दार भूरी चीनी) का आदान प्रदान होता है और फिर गाना बजाना और नाचना होता है।

छेड़ा रंगने का दिवस—

जब विवाह प्रारम्भ होता है तो सबसे पहले दिन वर के शरीर पर उबटन चढाते हैं और उसके कपड़े जो और हल्दी में भिगो दिये

जाते हैं। यह भिगोने का काम वर की भौजाई करती है। इसके बाद चॉवल घूघरी और वाफ्ला वर की गोदी में रख कर आरती की जाती है। स्त्रियाँ गीत गाती रहती हैं। फिर वर तलवार और शराब का लोटा लिये हुए चारों तरफ घूम कर धार देता है। इसको 'खीवो भेलावणो' कहा जाता है। तत्पश्चात वर को पाट पर बिठा कर खूब उछालते कूदाते हैं जिसको 'मोरीयु नाचना' कहते हैं। कन्या के घर पर भी ये दोनों दस्तूर किये जाते हैं सिर्फ अन्तर यही रहता है कि जब कन्या धार देने उठती है तो वह बजाय तलवार के अपने हाथ मे 'हरध्या' यानी तीर रखती है। तलवार और तीर लोहे का अस्त्र वर और कन्या के हाथ मे इस कारण दिया जाता है कि उनकी भूत प्रेतादि से रक्षा हो सके।

छेड़ा रगने और 'गणेह' के दिवस तक स्त्रियाँ हमेशा गीत और नाचने कूदने के लिये आती हैं जिसको भीली भाषा मे 'ठेकना' कहते हैं। 'गणेह' के दिन के एक रोज पहले 'हेरी दाखती' का रिवाज होता है। इस रिवाज के अनुसार स्त्रियाँ वर या कन्या को गाते बजाते हेरी यानी मोहल्ले मे फिराती हैं। चार स्त्रियाँ पछेवडा के चारो कोने पकड़ लेती हैं और बीच में वर या कन्या रह कर अपनी तलवार या तीर से उसको ऊँचा रखे हुए चलती है। जब घूम कर वापस अपने घर आती है तो 'छाणा' यानि कण्डा और पैसा से पूजन कराती हैं और शराब की धार दिलाती है फिर वर या कन्या की माँ सुसज्जित थाल लेकर 'पोखने' के वास्ते सामने आती है। वर और कन्या के साथ कॉरे लड़के और लड़कियाँ

रहती रहती हैं जिनको 'अमला' या 'अमली' कह कर पुकारते हैं । अमला और अमली पुंखने के बाद, वर या कन्या के घर में प्रवेश होने के पहले जलता हुआ अंगारा देहली पर रखती हैं जिसको पैर से फोड़ते हैं। फिर अमला अमली एक दूसरे का कन्धा पकड़े हुए नाचते कूदते हैं, गीत गाते हैं और अंगारों को पानी में भिगो देते हैं। इस रीति को 'हाकिओ भांजवो' बोलते हैं -

गणेह का दिवस—

गणेह के दिन वर या कन्या के नजदीकी सगा-सम्बन्धी जिनको पहले से न्योता हो जाता है, वर या कन्या के वास्ते वस्त्राभूषण लेकर आते हैं। दूल्हा या दुल्हिन इस दिन पक्षी न बोले उसके पहले उठ कर मक्का या चॉवल का भोजन करते हैं और बाद में 'खाध्यु नोतखु' यानि खान नूतने के वास्ते जाते हैं। खान पर एक पैसा जमीन मे गाड़ कर दतौन खड़ा करके शराब की धार देते हैं और पूजन करते हैं। इसी दिन चार मनुष्य शराब से भरा हुआ लोटा कुंकुम और पीले चॉवल लेकर विवाह मंडप के वास्ते सालर वृक्ष काटने जाते हैं। गुजरात में सालर न काटकर 'याबेण' काटते है। वृक्ष का पूजन करके लकड़ियाँ काट कर जब वापस आते है तब क्वॉरी कन्या एक थाल मे दीपक लिये हुए स्वागत करती है फिर वे मॉडवियां (मण्डप की लकड़ियाँ लाने वाले) उन लकड़ियों को हाथ मे रखे हुए मद्य पीकर खूब नाचते हैं और ढोली ढोल बजाता रहता है। दोपहर को 'फुलेकुं' निकाल जाता है जिसका यह अर्थ

है कि गॉव की स्त्रियॉं वर या कन्या को गाजे-बाजे के साथ 'अगाट्ट' (पूर्वजों के स्थान) पर ले जाती है जहॉं पर विधिवत् पूजन होता है। वापस वहॉं से लौट कर जहॉं सवेरे दतौन खड़ा किया गया था वहॉं आते हैं और वहॉं की मिट्टी खोद कर एक टोकरी में भर ले आते हैं। इस मिट्टी को लीप कर 'गोतरेज मॉडते हैं अर्थात् वर के घर मे वर की आकृति कुंकुम से और कन्या की आकृति उबटन (पीठी) से और कन्या के घर मे कन्या की आकृति कुंकुम से और वर की आकृति उबटन से कॉरी कन्या मॉडती है। चॉवल को बारीक पीस कर और पानी मे भिगो कर उससे चारों ओर चोखट खींचा जाता है। घर के ऑगन मे चार विवाहित पुरुष चार गडढे खोद कर हर एक गडढे में पैसा और पॉच प्रकार का नाज डाल कर 'माण्डवा' यानि मण्डप रोपते हैं। फिर कच्चे सूत के धागे से पीपल और आम के पत्तों से उसको सजाते हैं। तदन्तर 'हाथ घलणु' का जातीय रिवाज होता है जिसके अनुसार सब गॉव के लोग इकट्ठे हो कर आते हैं और वर के तिलक करके दीपक की शिखा पर हाथ तपा कर मस्तक और कन्धा दबाते हैं। वर इसके उत्तर मे सिर झुका कर नमन करता है। बाद मे चार आना से लेकर आठ आना तक थाली मे रख कर सब लोग बिखर जाते हैं। यह प्रथा भील जाति में परस्पर सहायता प्रदान करने को सूचक है। यह रिवाज कन्या के घर पर भी होता है।

वर निकासी–

बरात रवाना होने के दिन वर का उबटन उतारने के बाद 'पड़लू' नाचने का रस्म होता है जिसके अनुसार कॉरी कन्याएँ 'पड़लू' यानि शादी के वस्त्र सिर पर धर के नाचती हैं और वर अंगरखा, पीली पगड़ी, सफेद रुमाल पहिना कर सिर पर 'मोड़' और दाहिने पैर मे 'पीड्लु' (एक प्रकार का डोरा) बॉधते है । इसके बाद अमला मिल कर वर को कन्धे पर बिठा कर नचाते हैं और अमली चॉवल और पैसे लिये हुए साथ में रहती है जिसको वर अपने घर तक उछालता जाता है। घर के दरवाजे पर पहुँचने के बाद, वर की बहिन सामने आकर अपने भाई का वस्त्र पकड़ कर खीचती है उस वक्त वर अपनी बहिन को गाय, भैंस वा आभूषण देता है। घर से प्रस्थान करते वक्त वर अपने माता का स्तन-पान करता है जिसको 'बोबा देणा' का दस्तूर कहा जाता है। माता न हो तो सौतली मॉ, चाची, बड़ी बहन, बड़ी भौजाई इस रस्म मे शरीक होती है। भीलों मे यह विश्वास है कि यदि यह रस्म न किया जाय तो वर की शीघ्र मृत्यु हो जाती है या वर भारी आपत्ति में फॅस जाता है । समझा जाय तो इसका यह मतलब निकलता है कि अब पुत्र को अपनी माता पर निर्भर रहने की आवश्यकता नही है।

जब बरात विदा होती है तब सबसे पहले लगन्या (लग्न और वस्त्र ले जाने वाले) कन्या के घर पहुँचते हैं और वहॉ गोतरेज पर वस्त्र और लग्न रखदेते है। इधर बरात जब कन्या के गॉव

के नजदीक पहुँच जाती है तो 'चॉटी भाणा' की रीति होती है। इसके अनुसार कन्या पक्ष वाले वर के बाप से पाँच लोटा दारू और बारह पैसे लेते हैं। बरात कन्या के घर के बाहर आने पर कन्या की बहन हाथ मे थाल लेकर स्वागत करने के लिये आगे बढ़ती है और बरातियों मे से चार पाँच के तिलक करके सिर पर कलश धर खड़ी हो जाती है और वर का बाप कलश मे पैसा डालता है। इसको 'हामैयु' कहते हैं। बाद में बरात को ठहराने का प्रबन्ध किया जाता है। बरात प्राय. तीन रोज तक ठहरती है और भोजन वर के बाप की तरफ से होता है। शादी न होने से पहले बराती लोग कन्या के आँगन पर जाकर नहीं नाचते, यदि ऐसा हो जाय तो ५) रुपया जातीय जुर्माना के रूप मे देना होता है।

विवाह का दिवस—

विवाह के मुख्य दिन 'नखेत' होता है। वर का बाप इस दस्तूर पर डापा चुकाता है। डापा मे वेश, हाल्ला, पागड़ी, सासू महाडा, काका पछेड़ी इत्यादि वस्त्र होते है। इसमे वर और कन्या दोनों पक्ष वाले लोग सम्मिलित होते हैं, जिनको कन्या का बाप शराब पिलाता है। 'नखेत' हो जाने पर कन्या पक्ष की स्त्रियाँ वर को पूजन कराने के लिये 'अगाट' (पूर्वजों का चबूतरा) पर ले जाती है। तत्पश्चात बरात सज-धज कर निकलती है। कोई ढोल बजाता है कोई बन्दूके छोड़ता है और कोई तलवारे लिये हुए

निकलते हैं। कन्या के घर के बाहर बाँस या लकड़ी का तोरण रखा जाता है जिसको वर अपनी तलवार को छू कर कन्या के घर मे प्रवेश करता है। प्रवेश करने के पूर्व कन्या पक्ष की स्त्रियाँ कुंकुम, दही, अक्षत और दीपक की थाल सजा कर सामने वर का अभिवादन करने आती हैं और वर का तिलक करके कलश मे बँधवाती है। कलश मे वर एक दो पैसा आहिस्ते से रख देता है। फिर दरवाजे के भीतर प्रवेश होते ही कन्या का भाई तलवार लिये हुए नाचता हुआ सामने आता है, जिसको बाहर पैसे जैसा कि रिवाज है दिये जाते हैं। मण्डप के पास आने पर स्त्रियाँ गीत गाती हुई आरती करती हैं और मक्का का दलिया और राख के लड्डुओं की थाल सजा कर पूँखती है। जब वर मण्डप में बैठ जाता है तो सूपड़े द्वारा पानी की वर्षा की जाती है जिसको 'मण्डप बरसाना' बोलते हैं। कन्या की अमली लोटे मे कंकड भर कर वर के कान के पास जाकर जोर से बजाती है। ब्राह्मण और जहाँ ब्राह्मण न हो तो कन्या का बहन या भौजाई शादी कराने के वास्ते मण्डप में बैठती हैं। मण्डप के बीच मे आटे का चतुर्कोण बना कर, उस पर नारियल और नाज के दाने रख कर घी की आहुति दी जाती है। कन्या को वर की बाईं ओर बिठा कर कन्या के बायें हाथ पर वर का दाहिना हाथ रखवा कर पाँच हाथ लम्बे कपड़े से बाँधते हैं जिसको 'हथलेवा जोड़ना' कहते हैं और जिस कपड़े से हाथ बाँधे जाते हैं उसको 'खंदवायु, कहा जाता है। इस कपड़े का एक पल्ला वर के कन्धे पर और

दूसरा पल्ला कन्या की साड़ी के आँचल से बाँध दिया जाता है जिसको 'गठजोड' कहते हैं। फिर सात बार वर और कन्या अग्नि के चारों ओर 'फेरा' फिरते हैं मेवाड़ में दुल्हिन आगे और दूल्हा पीछे रहता है और गुजरात मे इसके विपरीत होता है। खड़क मे चौदह फेरे फिरते हैं। सात फेरे में दूल्हा आगे रहता है और बाकी सातमें दुल्हिन। फेरा फिर चुकने पर हथलेवा छुड़ाया जाता है उस वक्त कन्या को दहेज दिया जाता है। वर-वधू आखिर मे दारू (शराब) की धार देते हैं।

मनवेर और बरात की विदा :—

विवाह हो जाने पर यदि वर का कोई नजदीकी सम्बन्धी वधू के गाँव मे रहता हो तो चाँवल और घूघरी की दावत देता है जिसको 'मनवेर' कहा जाता है। मनवेर की दावत मे दुलहिन भी अपने सुसराल जाती है जिसको भीली भाषा मे 'लाड़ी काढ़वी' कहा जाता है। इसके बाद गठजोड़ बांधे वर-वधू को 'गोतरेज' पर ले जा कर नमन कराते है और मण्डप पर लाकर वर-वधू को कन्धे पर बिठा कर दरवाजे तक नचाते-कुदाते है और वर-वधू नाज के दाने और पैसे उछालते जाते है। उस दिन शाम को बड़ा-भोज होता है जिसमे माँस भी काम मे आता है। रात को वर और वधू को अलग झोंपड़ी मे सुलाते है। सवेरे लोटा, थाली, गाय, बकरी, पिंजणियाँ, काँबी इत्यादि वस्त्राभूषण कन्या को दहेज में दिया जाता है। फिर बरात रवाना हो जाती है।

बरात लौटने पर वर के घर दस्तूर :—

बरात जब लौट कर वापस वर के गॉव में आती है तब स्त्रियॉ सन्मुख आकर स्वागत करती हैं और वर-वधू को अगाट पर ले जा कर नमन करवा कर रोड़ी के सात फेरे दिलाती हैं। रोड़ी में हल, जुड़ा, कुड़ी, खेती करने के औजार ढोली पहले से छिपा रखता है। वर कुड़ी को रोड़ी मे से निकाल कर गाड़ता है और वधू उसको उखाड़ कर दूर फेंक देती है। दूसरी वार वधू कुड़ी को गाड़ती है और वर उसको निकाल कर फेंक देता है इस तरह सात वार होता है। वाद में कण्डे (गोवर के छाणे) वर-वधू के हाथ में देकर एक दूसरे पर फिंकवाते हैं। वड़ा हास्य, मनोरंजन होता है और वर-वधू मे स्पर्धा होकर परीक्षा हो जाती है। अन्त मे वर और वधू को कन्धे पर विठा कर उनके हाथ मे मक्का के दाने दे दिये जाते हैं और वर वधू पर और वधू वर पर मक्के के दाने फेंकते हैं। इस तरह मक्का के दाने फेंकते हुए जब अपने घर के सामने आजाते हैं तब वर की वहिन या भौजाई स्वागत करके उनको माण्डपे मे ले आती है। तिलक और आरती करके रोडी मे छिपी हुई वस्तुओं से पूंखती है इसके वाद गोतरेज जाकर वहा पर वर-वधू से स्त्रियॉ सिर झुकवाती हैं। माता-पिता और अन्य सम्वन्धियों के पैरों मे भी वर-वधू हाथ जोड़ कर नमन करते हैं। वधू से रिवाज माफिक मटका देकर पानी भराया जाता है और जब वधू पानी भर कर ले आती है तो वर पटसाल पर मटका सिर से उतारता है। मटके का पानी वधू अपने कुटुम्वियों को पिलाती है। अन्त में सब एकत्रित लोग मिल कर नाचते-कूदते हैं।

'लग्न ऑंणा' यानि गौना :—

बरात वर के गाँव पहुँचने पर दूसरे रोज वधू का अमला 'लग्न ऑंणा' (गौना) का कौल करके वधू को उसके पिता के घर वापस लाता है। दो-चार रोज बाद वर अपने साथ दो-चार मनुष्यों को लेकर, वधू को वापस लेने के लिये आता है जिसको 'लग्न-ऑंणा' कहते हैं। वर को इस अवसर पर शाम के वक्त रोटी, दारू और सवेरे बकरे का मॉस, दारू और घूघरी का भोजन कराया जाता है। दो-चार दिन ठहरने के बाद वधू का बाप वर-वधू को विदा कर देता है। आठ दस रोज बीतने पर वधू का बाप या भाई वधू को लेने जाता है और दूसरा गौना होता है। इस तरह वक्त वक्त पर पाँच छ बार गौना होता है बाद में वर-वधू के घर पर मौके से ही जाता है।

दाम्पत्य-प्रेम—

भील स्त्री-पुरुष आनन्द पूर्वक प्रेम के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं और अक्सर हर काम में साथ रहते हैं। आज कल के पढ़े लिखे दम्पति मे जितना प्रेम दिखाई देता है उससे कई गुना अधिक प्रेम भील स्त्री-पुरुष में होता है। व्यभिचार भीलों में बहुत कम पाया जाता है। भील अपनी स्त्री के सतीत्व की रक्षा के निमित अवसर आने पर प्राण देने को भी तैयर रहता है। यद्यपि भील अपनी स्त्रियों पर प्रेम और सम्मान रखते हैं तथापि उनके आचरण पर तीव्र दृष्टि रहती है। यदि किसी कारण

भील दम्पत्ति सुख से नहीं रह सकते हैं तो पति स्त्री को त्याग देता है। वधू भी चाहे तो दूसरे पुरुष के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सकती है, लेकिन वधू के पति-त्याग करने पर सम्बधित पुरुष को 'झगड़ा' देना होता है और पति 'झगड़ा' पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि भीलों में विवाह की पूर्ण स्वतंत्रता है और यही कारण है कि उनका दाम्पत्य जीवन सुख से बीतता है और व्यभिचार भी नहीं दिखाई देता है।

पाँति–बटवारा:—

विवाह होने पर बहुधा वर वधू अपने पिता से जुदा रहने लग जाते हैं। वर का छोटा भाई दुःखी होता है तो वर का पिता स्वयं उनको अलग कर देता है। जब तक वर के छोटे भाइयों का विवाह नहीं होता, तब तक वर का बाप अलग होने पर भी सब खर्चा देता है। जब सब भाइयों का विवाह हो जाता है, तब पाँती-बट-वारा होता है। पाँती–बटवारे का यह प्रचलन है कि सब सम्पत्ति बराबर बांटी जाती है लेकिन सबसे छोटे भाई को जो अपने पिता के शामिल रहता है एक पाँती ज्यादा मिलती है। बाप का बनाया हुआ घर भी छोटा भाई बाप की मृत्यु के बाद लेने का हकदार होता है। दूसरे भाई अपने मकान स्वयं बनाते हैं या बाप खर्चा देकर बनवा देता है। पाश्चात्य देशों में जिस तरह विवाह होने पर पुरुष अपना निर्वाह स्वयं करते हैं उसी प्रकार भील भी विवाह होने पर अपने बाप की कमाई पर निर्भर नहीं रहते हैं।

छेड़ा फाड़ना यानी तलाकः—

जब स्त्री आलसी, चोर प्रकृति वाली और दुराचारिणी हो या पति के सम्बन्धियों की सेवा भली प्रकार से न करती हो या बार बार भाग कर अपने बाप के घर चली जाती हो या स्त्री का डाकिन होने का सन्देह हो या स्त्री पर पुरुष नाराज रहता हो और आपस मे अनबन रहती हो तो पुरुष स्त्री को तलाक दे सकता है। जो भील अपनी स्त्री का त्याग करना चाहता है वह अपनी जाति के लोगों के सामने नई साड़ी के पल्ले मे रुपया बाँधकर उसको चौडाई की तरफ से फाड़कर स्त्री को पहना देता है इससे यह समझा जाता है कि वह स्त्री अपने पति द्वारा परित्यक्त कर दी गई है। यदि साड़ी का पल्ला लम्बाई की तरफ से फाड़ा जाय तो उसमे कुछ सन्देह रह जाता है और पूरा 'छेड़ाफाड़ना' या 'तलाक' नहीं कहा जा सकता। इस दशा मे स्त्री अपने पति को छोड़ कर किसी दूसरे पुरुष से अपना सम्बन्ध जोड़े तो उसका पति उस पुरुष से 'झगड़ा' ले सकता है। कहीं कहीं स्त्री की साड़ी फाड़ने के बजाय पुरुष की पगड़ी का पल्ला फाड़कर भी दिया जाता है। स्त्री को पुरुष की तरह तलाक देने का अधिकार नहीं है। पति के नपुसक होने पर, अति कष्ट देने पर, जाति-बहिष्कार करने पर, हिन्दू धर्म छोड़ने पर स्त्री अपने पति को छोड़ सकती है। यदि पति अपनी स्त्री का निर्वाह न कर सके तो उस दशा में भी स्त्री पति-त्याग कर सकती है। स्त्री बहुधा पति के विरुद्ध तलाक़ करने की इजाजत

कचहरी से मांगती है यानि वह अपनी मुराद कचहरी मे जाकर अर्जी दावा पेश कर प्राप्त कर सकती है।

झगड़ा:—

जब कोई भील दूसरे की स्त्री को भगा ले जावे या स्वयं स्त्री अपने पति को त्याग कर दूसरे पुरुष के साथ चली जावे तो विवाहित पति उस दूसरे पुरुष से 'झगड़ा' लेता है जिसका निर्णय 'भील पंचायत' मे होता है। झगड़े की रकम अक्सर दो सौ रुपये से लेकर चार सौ रूपये तक ठहरती है। पुराने समय में मेवाड़ में झगड़े का बारह बीस रुपया, बारह बकरे, बारह भट्टी दारू (शराब) लेने का रिवाज था और गुजरात मे रुपये के अलावा दो बकरा और भट्टी दारू लिया जाता था। आज कल रुपया लेने की ही प्रथा है जो भी पूरे बारा बीसी यानि दो सौ चालीस नहीं होते। यदि किसी के पास झगड़े की रकम देने को न होतो स्त्री कुछ हर्जाना के साथ पूर्व पति के सिपुर्द कराई जाती है।

विधवा विवाह :—

विधवा विवाह भीलों मे 'नाथा' या 'करेवा' के नाम से मशहूर है। पुरुष के मर जाने पर यदि स्त्री युवती हो और बाल-बच्चे न हों और वह अपना मन अपने देवर पर रखती हो तो पति के मरने के कुछ दिन बाद अपने पिता के घर चली जाती है। विधवा युवती का पिता, यदि वह विवाह करना चाहती हो तो आधा दापा लेकर उसका पुनर्विवाह कर देता है। कोई खास दस्तूर इसमें

नहीं होता। प्राय किसी शनिवार की रातको, जो पुरुष विधवा के साथ शादी करना चाहता है अपने घर से कुछ वस्त्राभूषण लेकर निकल जाता है और उसको पहना कर अपने घर ले आता है। घर लाने पर पानी भराने की रीति की जाती है। कोई जाति-भोज देने का भी नियम नहीं है। यदि कोई भोज देना चाहे तो रोक नहीं है। पुरुष जो विधवा-विवाह करता है वह क्वाँरा है तो जातीय भोज करना आवश्यक है। 'पीठी' करना (उबटन चढाना) और 'मोरीयु नाचना' भी विधवा विवाह में होता है।

'पछेड़ी दडवुं' यानी पछेवड़ी डालना-

यदि विधवा के देवर मौजूद हो और वह उसके साथ पुनर्विवाह करना चाहती हो तो 'काहुं' यानि मृत्यु भोज के दो चार दिन पहले एकत्रित कुटुम्बियों और पाहुनों के सामने देवर अपनी भोजाई पर पछेवड़ी डालता है। फिर देवर पछेवड़ी का पल्ला डालते हुए यह कहता है कि मैं अपनी भोजाई को दूसरे के घर न जाने दूंगा। इस पर वहाँ पर एकत्रित लोग कहते हैं कि "सुखी रहो अने कमाई खाओ"। इस रस्म को भीली भाषा में पछेवडी दडवुं' कहते है देवर को अपनी भोजाई को घर मे रखने का प्रयत्न करना नहीं पड़ता, किन्तु इसको सम्मान की वस्तु समझ कर एक बालक भी ऐसी इच्छा रखता है। यदि देवर की इच्छा के विरुद्ध भोजाई किसी दूसरे पुरुष से विवाह कर लेती है तो कभी कभी बड़ा झगड़ा मच जाता है, जिसका निपटारा दापे के बराबर रुपया मिलने पर देवर करता है।

मृत्यु-संस्कार—

जब भीलों मे कोई मरता है तो इसकी सूचना ढोल या नांदला (बकरी की चमड़ी से मढा हुआ मिट्टी का ढोल) बजा कर की जाती है। मृत व्यक्ति के घर पर 'कामरिया' जोगी आकर दरवाजे पर नकली घोडा और मिट्टी की सुराही रख कर बैठ जाता है और हाथ में पानी लेकर मृत व्यक्ति के घर पर आते है वे इस जोगी को नाज के दाने देते है। शीतला के रोग से मरने वाले को जमीन में गाडते हैं जिससे यह रोग अधिक न फैले। यदि गाड़ने पर इस रोग से दूसरा कोई न मरे तो शव को वापस निकाल कर जलाते है, लेकिन जलाने के वक्त मुँह अक्सर नीचे रखते हैं। यह रिवाज मारवाड़ मे जारी होना कहा जाता है। छोटे छोटे बच्चों की लाश भी पृथ्वी मे गाडी जाती है। हैजा से मरने वाले व्यक्ति के शव का भी दहन किया जाता है क्यों कि भील लोग मानते हैं कि यह रोग धुएँ से मिट जाता है। साधारण रिवाज शव को जलाने का है। कबीर पन्थी भील छ: फीट गहरी कब्र खोद कर शव को गाड़ते है। यदि प्रसवकाल मे कोई स्त्री मर जाय तो श्मशान में उसका शव ले जाते हुये सरसों के दाने बिखेरे जाते है। इसके लिये इन लोगों का विश्वास है कि मृत स्त्री की आत्मा वापस संसार मे नही लौटती। श्मशान पहुँच कर स्त्री का पेट चीर कर बच्चा बाहर निकाला जाता है और वह गाड़ दिया जाता है तथा स्त्री के शव का दाह-संस्कार होता है।

कहीं कहीं भीलो मे मृत्यु-संस्कार जनेऊ पहन कर किया जाता है। जब घर से मृत व्यक्ति के शव को ले जाते है तो सफेद कपड़े पहना कर बॉस की रथी पर रखते हैं और मुँह आगे एवं पैर पीछे किये हुये चार पुरुष उठाते है। अन्य हिन्दुओं मे यह प्रथा है कि पैर आगे और सिर पीछे रख कर श्मशान-भूमि पर ले जाते है। रथी के साथ घर से श्मशान भूमि तक घी और शक्कर से बना हुआ भोजन भी बॉध दिया जाता है। घर और श्मशान-भूमि के बीच मे आधा रास्ता तय हो जाता है तो रथी को जमीन पर रख कर वापस उठाते है। रथी के आगे मृत व्यक्ति का पुत्र या नजदीकी रिश्तेदार मिट्टी के बर्तन मे अग्नि और लड्डू हाथ मे लिये हुए चलता है। जब श्मशान-भूमि पर रथी पहुँच जाती है तो लड्डू को तोड़ कर इधर-उधर बिखेर देते है और रथी को भूमि पर रख देते है। फिर कर के बतौर एक पैसा रख कर दाह-सस्कार किया जाता है। दाह-सस्कार मे प्राय पुरुष ही भाग लेते है, लेकिन कालिये भीलों मे स्त्रियॉ भी मातम मे शरीक होती हैं। श्मशान-भूमि भील-प्रदेश मे बहुधा नदी-नाले के किनारे पर होती है। सबसे पहले चिता तैयार की जाती है जिस पर शव रथी से बाहर करके रखा जाता है। सबसे नजदीक सम्बन्धी चिता के चारों ओर एक परिक्रमा लगा करके आग रख देता है। मृत्यु-दिवस के तीसरे रोज मृत-व्यक्ति के शरीर की हड्डियॉ एक 'सुडला' यानि टोकरे मे बीन कर, नदी नालों या तालाब के पानी मे बहा दी जाती है। इनका यह विश्वास है कि जब तक हड्डियॉ पानी मे न

डुबो दी जाय, मृत्यु व्यक्ति की आत्मा शान्ति को प्राप्त नहीं होती और संसार में परिभ्रमण करती रहती है। जहाँ दाह किया गया हो वहाँ पत्थरों का एक बड़ा ढेर लगा दिया जाता है और उस पर चाँवल से भरा हुआ एक मिट्टी का वर्तन रखा जाता है। मृत्यु होने के वाद पहली होली, दीवाली और रक्षा-बन्धन के त्यौहारों पर सगे-सम्बन्धी आते हैं, रोते हैं और सब साथ बैठकर शराब पीते हैं और शोक मिटाते है। इस रिवाज को 'सोग भागणु' यानि शोक मिटाना कहा जाता है। जब तक यह रस्म नहीं होती है तब तक मृत व्यति का परिवार गाने बजाने, नाचने, मद्यपान करने व खुशी मनाने में सम्मिलित नहीं होता।

मृत व्यक्ति के स्मारक–

मृत व्यक्ति की स्मृति रखने के लिये पत्थर की छोटी शिलाएँ चबूतरियाँ बना कर रक्खी जाती हैं। इन शिलाओं पर मृत व्यक्ति की आकृति खोदी जाती है। पुरुप की आकृति सफेद पत्थर पर और स्त्री की काले पत्थर पर खोदने का रिवाज़ है। आकृतियाँ भिन्न भिन्न तरह की होती हैं। किसी शिला पर ढाल, तलवार और भाला लिये हुए अश्वारोही की शक्ल है तो किसी पर पूरा वस्त्र पहने हुए मनुष्य का चित्र बना हुआ है। अर्सकिन साहब के मत के अनुसार यह माना जाता है कि जो मनुष्य अश्वारोही के हाथ से मारा जाता है उसकी आकृति अश्वारूढ और जो ढाल-तलवार लिये हुए मनुष्य से मारा जाता है तो उसकी आकृति में ढाल-तलवार दिखाई जाती है। इस प्रकार की छोटी छोटी शिलाएँ

भील पालों में एक श्रेणी मे एक हाथ ऊँचे चबूतरे पर हर जगह मिलती है। इस स्थान को 'अगाट' कहते है।

मृत्यु भोज—

जिस रोज किसी घर मे कोई मर जाता है तो उस रोज उस घर मे भोजन नहीं बनता; अड़ोसी-पडोसी और जाति के लोग अपने अपने घर से रोटियाँ लाते है और मृत-व्यक्ति के परिवार को खिलाते हैं। मरने के तीसरे रोज 'तीसरा', नवमे रोज 'नवमी', बारहवें रोज 'बारमा' करने का रिवाज भीलों मे भी पाया जाता है। अन्तिम मृत्यु भोज को 'काट्टा' कहते हैं जो किसी महीने के शुक्ल पक्ष की पचमी या सोमवार देख कर करते है। छोटे बच्चे का 'काट्टा' तीसरे रोज ही हो जाता है। 'काट्टा' मे पहले भैंसा, बकरा का माँस उपयोग मे आता था, लेकिन कुछ वर्षों से यह बन्द है। आजकल चॉवल, घी, गुड़ और चूरमा-बाटी तथा मक्का का दलिया अक्सर बनाया जाता है। कोई कोई भील गेहूं का दलिया भी करते है। मृत्यु-भोज का खर्चा मृत-व्यक्ति के परिवार पर नहीं पड़ता। जाति के लोग आपस मे बॉट लेते है। यहाँ तक कि मक्का या गेहूं की बाटियाँ भी अपने घर से बना कर लाते हैं। जब सारे पाल वाले इकट्ठे होते है तो गॉव का मुखिया जीमने वालों की सख्या देखकर एकत्रित भोजन को बराबर बॉट देता है। यदि बच जाय तो दुबारा बॉटने का भी तरीका है। चार रथी उठाने वाले, पॉचवा मृत-व्यक्ति के दग्ध शरीर की राख संग्रह करने वाला, छट्टा भानजा और सातवॉ कोई अन्य पुरुष—ये सात मनुष्य सबसे

पहले जीमते हैं। दामाद और दामाद न होने पर भाई या बहनोई मृत्यु भोज के अवसर पर शराब मंगवाता है जिसको जमीन में खड्डा खोदकर एक मिट्टी के बर्तन में रखा जाता है और ढोली ढोल बजाना शुरू करता है। यह दस्तूर दामाद करते हैं। सबसे बड़ा पहले व उसके बाद उससे छोटे क्रमशः आते हैं और बारी बारी से शराब उवेल कर बैठ जाते हैं। घी-भोजन में काम नहीं आता। यह उसके वास्ते मँहगी चीज है। घी इस्तेमाल करने से मृत्यु-भोज का खर्चा विशेष हो जाता है। ऐसा सुना गया है कि एक बार किसी भील ने घी में बनाया हुआ दलिया का भोजन परोसा जिसको तिरस्कृत करके नहीं खाया और एक एक पोटली धूल की ले जाकर दलिये में डाल आये। इससे पाया जाता है कि भील जाति मृत्यु-भोज पर ज्यादा खर्चा करना नहीं चाहती

'काट्टे' के अवसर पर भोपा और जोशी:—

'काट्टे' के रोज सवेरे 'अरद' का दस्तूर होता है। भोपा (Witchfinder) बाजोट (लकड़ी का पाट) पर बैठ कर तश्तरी मे ढके हुए मुँह का एक बड़ा बर्तन अपने सामने रख लेता है। दो भील डंकों से उस तश्तरी को पीटते हुये मर्सिया गाते हैं। ऐसा करने से मृत-व्यक्ति की आत्मा उस भोपा के शरीर में प्रवेश करती है और इच्छित वस्तु माँगती है। यदि साधारण तौर से मृत्यु हुई तो दूध और घी माँगा जाता है। भोपा मृत-व्यक्ति के आवेश मे अपने मुँह से वही शब्द बोलता है जो मरते वक्त उस व्यक्ति के मुँह से निकले थे। जो वस्तु भोपा मांगता है वह तत्काल ही दी जाती है। भोपा माँगी हुई वस्तु को सूँघकर रख

देता है। यदि अकाल मृत्यु हुई तो बन्दूक, तीर और कमान मांगता है और मृत व्यक्ति के आवेश मे आकर वह जोर से चिल्लाता है। बन्दूक छोड़ने का प्रयत्न करता है और अन्य अंग भंग की चेष्टाएँ दिखलाता है। बाद मे अन्य पूर्वजों की आत्मा का भी भोपा के शरीर मे प्रवेश होना कहा जाता है और उनके साथ भी यही व्यवहार होता है।

शाम को जोगी की बारी आती है जो सेर भर आटा लेकर उस पर एक पीतल का छोटा घोड़ा, एक बाण और एक पैसा रख देता है। घोड़ा मृत पुरुष की सवारी समझी जाती है। घोड़े के गले मे रस्सी बाँध कर नामोच्चार करते हुए, जोगी मृत व्यक्ति के वंशजों को दान पुण्य करने के वास्ते कहता है। उसके कुटुम्बी दान मे गाय या अन्य पदार्थ जो भी देना हो देता है और मृत पुरुष का नाम लेकर मृतात्मा को भोजन पहुँचाने की क्रिया करता है। इसके अनुसार एक खड्डा जमीक मे खोदा जाता है जिसमें खीर, शराब और एक पैसा डाल कर भर देते हैं। इस तरह अन्य क्रियाएँ भी जोगी मृत व्यक्ति के परिवार के लोगों से करवाता है। मक्का के आटे को दूध मे भिगोकर उसकी गोलियाँ बना कर जोगी मृत व्यक्ति के नजदीकी रिश्तेदार से एक एक करके मिट्टी के बर्तन मे फिकवाते हुये मन्त्रोच्चारण करता जाता है। इसके बाद नारियल का होम होता है। होम के बाद उस मृत व्यक्ति के रिश्तेदार को नये कपडे पहना कर नंगी तलवार हाथ में देकर खड़ा किया जाता है और जोगी फिर यह शब्द बोलता है

"वावसी ! धर्म का भाता आलो" यानि वावजी धर्म का अन्नदान दो। इस पर मृत व्यक्ति के कुटुम्वी मक्का का दलिया, वहन-वेटी वस्त्र और सेर दो सेर आटा तथा गॉव के लोग एक एक पैसा धर्म में देते हैं। तत्पश्चात् जोगी अपनी तूम्वड़ी में खाद्य पदार्थ भर कर धर्मदान लेकर चला जाता है।

विरासत का कायदा—

मृत-व्यक्ति के मरने पर उसकी स्त्री और सवसे वड़ा लड़का वारिस समझा जाता है। यदि दोनों में मेल हो तो दोनों घर की सम्पत्ति के मालिक होते हैं और कुटुम्व का भरण-पोषण करते हैं। अगर दोनों में मेल न हो तो, स्त्री सारे कुटुम्व का भरण-पोषण करने की शर्त पर मालकिन वनती है। स्त्री और लड़का न होने पर भाई और नजदीकी रिश्तेदार वारिस होते हैं। वहन वेटी का पैतृक सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं रक्खा गया है। मृत-व्यक्ति अपने जीवन-काल मे अपनी इच्छा से जितना दे जाता है उसी का उपयोग वहन-वेटियॉ कर सकती हैं—यह साधारण नियम है। मरने के पहले कुटुम्वियों को वुलाकर कोई व्यक्ति यह कह जाय कि अमुक प्रकार से मेरी सम्पत्ति वॉटी जाय तो वह उसी प्रकार वॉटी जाती है।

८ धर्म और अन्धविश्वास —

भील जाति हिन्दू है—

भील जाति हिन्दू धर्म को पालने वाली है। यद्यपि भील की गणना सन् १९२१ मे अधिकतर भूत प्रेत वादियों (Animists)

मे हुई है और इसके बाद मे ३० प्रतिशत लोग भूत प्रेत वादी ही माने गये तो भी इनके देवी-देवता और रीति-रिवाज से ये लोग हिन्दू ही सिद्ध होंगे। सदियों से अज्ञानता और अंधविश्वास मे पडे रहने से भूत-प्रेत वादी होने का भान होता है किन्तु वास्तव मे इनको ऐसा कहना अनुचित होगा। जब भील एक दूसरे से मिलते हैं तो 'राम-राम' मुँह से बोलते है। रामायण के लेखक वाल्मीकि ने भील ही के घर मे जन्म लिया था। हनुमान, महादेव और ऋषभदेव आदि पर ये लोग पूरा इष्ट रखते हैं। भील प्रदेश मे महादेव और हनुमानजी के कई मन्दिर है जहाँ आराधना-स्तुति भील लोग करने जाते हैं। ऋषभदेव का प्रसिद्ध जैन मन्दिर मेवाड़ मे धूलेव नगरी में है जहाँ पर भील लोग दर्शन करने जाते हैं और 'कालाजी' कह कर पुकारते है। कालाजी की शपथ खाकर भील झूठ नहीं बोलता और कालाजी की चढी हुई केशर जो पानी मे घोल कर पिला दी तो वह हर एक बात जो पूछी जाय वह सब सच सच बतला देता है। ये सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों में भी विश्वास रखते हैं। चन्द्रमा से प्रार्थना यह करते है कि "हमारे बाल-बच्चों को खुश रखना, भला करना और अच्छा दर्जा बढाना" जब ग्रहण लगता है तब यह लोग दान-पुण्य करते हैं, बन्दूके छोड़ते हैं और ढोल बजाते हैं। इनकी यह श्रद्धा है कि धर्म-पुण्य करने से सूर्य और चन्द्र अपने ऋण से मुक्त हो जाएंगे। अन्य हिन्दुओं की भाँति यह जाति भैरव, राम-देव, खाग-देव, बाघ देव, बापजी इत्यादि देवता और अम्बिका, कालिका,

शीतला इत्यादि देवियों की पूजा और मिन्नतें करते हैं। देवियों के मन्दिर में शराब की धार देते हैं। भैंस और बकरे का बलिदान चढाते हैं। इस बात का भी यकीन रखते हैं कि वृक्ष, नदी, पहाड़ इत्यादि जो प्राकृतिक वस्तुएं हैं, उनके अधिष्ठाता देवता होते हैं और वे मनुष्यों पर अपना प्रभाव रखते हैं, जब तक इनकी भेंट पूजा न की जाय, ये सन्तुष्ट नहीं होते। पहाड़ के देवता को सन्तुष्ट करने के वास्ते 'मगरे' की बोलमा बोलते हैं जिसके अनुसार सारे पहाड़ को जला देते हैं। कालिये-भील जो मेवाड़ की प्रसिद्ध ढेवर झील के टापुओं में रहते हैं, मगर की शिकार करने के पहले 'मच्छी-माता' की पूजा करते हैं और पालों में भील फसल काटने के पहले पाँच पाँच भुट्टे ग्राम-देवता को चढाते हैं। होली, दीवाली, दशहरा, रक्षा-बन्धन आदि त्यौहारों पर भील सब रिवाज और रस्म हिन्दुओं की तरह करते हैं, सिर्फ सभ्यता से दूर रहने से कुछ भिन्नता है। जन्म, परण (विवाह) और मरण-(मृत्यु) के जो संस्कार भीलों में देखे जाते हैं वे हिन्दुओं से करीब-करीब मिलते-जुलते हैं। महज अन्ध-विश्वास से ही, जो इस जाति में कुछ अधिक है, यह जाति भूत-प्रेत-वादी मान ली जाय तो क्या हिन्दुओं में अन्ध विश्वास नहीं है? इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, भील जाति को हिन्दू मानना होगा।

भूत प्रेतादि के प्रति भावना—

अपना सफल मनोरथ सिद्ध करने के लिये तथा स्वास्थ्य और जीवन को कायम रखने के लिये, ये लोग भूत प्रेतादि के कृपा-पात्र

बचने का प्रयत्न करते हैं। भूत प्रेतादि के मुख्य अधिष्टाता 'महा भैरव' माने जाते हैं। इन लोगों का यह विचार है कि भूत-प्रेतादि दुनियाँ मे भटकते फिरते हैं और हानि पहुँचाते है इस वास्ते इनको सन्तुष्ट करना उचित है। अगाट पर जो मूर्तियाँ इनके पूर्वजों की होती हैं, वहाँ जा कर नकली मिट्टी का घोड़ा और दीया रख कर और कपड़े की ध्वजा लटका कर मिन्नत पूरी करते है। नकली घोड़े के एक छेद होता है जिसका यह अभिप्राय है कि मृत व्यक्ति की आत्मा उस छेद मे प्रवेश कर स्वर्ग तक पहुँचती है। यह घोड़ा अगाट पर रखने के बाद ग्राम-देवता के भेंट किया जाता है जो उनके युद्ध मे सैनिकों की संख्या बढ़ाते है।

भील साधू—

भीलों मे पुरोहित न होने के कारण, चमार और बलाई जाति के गुरुओं से काम लेते है। ये लोग साधुओं की तरह रहते है। और नाम ब्राह्मणों की तरह रखते है। तुम्बी, चिमटा, झोली, माला और तम्बूरा लिये फिरते है। इनके चेले नहीं होते हैं। इनका पद वंश-परम्परा-गत होता है। मुख्य कर्तव्य भिक्षा माँगना और भजनोपदेश सुनाने का है। जन्त्र-तंत्र भी ये लोग किया करते है। भीलों मे भैरव के उपासक 'भोपा' कहलाते है जो हाथ की अँगुली मे तांबे की अँगूठी पहनता है और गले मे नाग की आकृति वाला चाँदी का तावीज रखता है। भोपे वार-त्योहार तथा भाद्र-पद और माघ-शुक्ल ६ ष्ठी को भैंरोजी की खास तौर से

सेवा-पूजा करते हैं। सिन्दूर और पन्नी चढा कर पुष्प और नीम के पत्ते मस्तक पर चढाते हैं। फिर नारियल और घी का धूप दिया जाता है और भोपा भैरव के आवेश में होकर बहुत जोर से चिल्लाता है और लोहे की सॉकल अपनी पीठ पर ठोंकता है जिसको 'भाव' कहते हैं। जब शान्त होता है तब लोग पूछ-ताछ करते हैं और 'आखा पाती' (नाज के दाने और नीम की पत्ती) और 'भभूत' (धूप दी हुई राख) मॉगते हैं। 'आखा पाती' सिर पर चढा कर रख लेते हैं और 'भभूत' खा जाते हैं। रोगी जो वहॉ आता है उस पर मोर-पंख का झाड़ू फेरा जाता है जिससे यह विश्वास हो जाता है कि रोगी के शीघ्र आराम हो जायगा। भील कबीर-पन्थी साधू को मानते हैं। एक संगठन 'भगत' साधुओं का भी है जो भगवान् रामचन्द्र का अनन्य भक्त खराड़ी सूर्यमल के अनुयायी हैं। इन भगत साधुओं के घर, भील प्रदेश में पीले लम्बे २ झण्डों से एक दम पहचाने जा सकते हैं। हर रोज स्नान करते हैं, ललाट पर लाल रंग का निशान करते हैं और पगड़ी के चारों ओर पीले रंग की धारी बॉधते हैं। ये 'भगतों' के सिवाय दूसरे के हाथ का भोजन नहीं खाते। पहले जमाने मे भील इनको बहुत सताते थे अब इनकी पूजा करते हैं। ये भीलों को उपदेश सुनाते है। मॉस–मदिरा सेवन करने और चोरी करने के विरुद्ध प्रचार करते हैं। भीलों के स्तुति-पाठक गवैये को 'कामरिया' जोगी कहते हैं जो जोगी के वेश मे सारंगी हाथ मे लिये हुए भजन गाते हैं और मॉगते फिरते है।

जादू-टोना—

भीलों में जादू टोने का पहले बहुत प्रचार था और आज भी ये जादू टोना और जन्त्र-तन्त्र मे विश्वास रखते हैं। पहले भील प्रदेश में कई जादूगरनियाँ होती थी जिनका पता भोपा लगाया करता था। पता लगने पर जादूगरनी को भील बुरी तरह से सताया करते थे। किसी को उल्टे सिर लटकाते, किसी के दाँत उखाड़ते, किसी की पीठ पर जलती हुई लकड़ी को मारते, किसी के मुँह में शराब और आँखों में लाल मिर्च डालते और किसी को बिलकुल गाँव से बहार निकालते थे। उल्टे सिर लटकाने पर जो वह इकबाल हो जाती तो दो ही प्रकार की सजा मिलती थी या तो उसका सिर काट लिया जाता या गाँव से बाहर निकाल दी जाती। सजा देने के पहले जादूगरनी की कई तरह से परीक्षाएँ ली जाती थी। साधारण परीक्षा यह थी कि एक लद्दू बैल के बोरे मे एक तरफ कण्डे (गोबर के छाने) और दूसरी तरफ जादूगरनी को रख कर पानी में बोरा डाल दिया जाता। जो सच्ची जादूगरनी होती है वह पानी में नहीं डूबती। कठिन परीक्षा यह होती थी कि एक बाँस पानी मे गाड़ दिया जाता था जिस पर जादूगरनी चढ़ा दी जाती थी और एक भील दूर से तीर चलाता और दूसरा उस छोड़े हुए तीर को लाने जाता। इतने समय तक यदि वह पानी के ऊपर ही साँस लेती रहती तो सच्ची जादूगरनी जानी जाती और पानी में डूबने पर निर्दोष समझी जाती जाती। इसके अतिरिक्त दो प्रकार की परीक्षाएँ और ली जाती थीं। जादूगरनी को एक बोरे

में वॉध कर तीन फीट गहरे पानी में छोड़ दी जाती यदि वोरे में से अपना सिर पानी के ऊपर निकाल सकती तो पक्की जादूगरनी वतलाई जाती थी। लोहे की कढ़ाई में तेल गर्म किया जाता था। अगर कोई स्त्री उस गर्म तेल मे डाल कर निकाल लेती तो वह सच्ची ठहराई जाती। ये सव तरीके सही समझे जाने चाहिये क्योंकि वहुत कुछ वातें परीक्षा लेने वालों के हाथ में होती थीं जैसे तीर चलाने वाला दूर या नजदीक तीर चलावे और तीर लाने वाला जल्दी या धीरे दौड़े। चाहे कुछ भी हो ये सब पुरानी वाते जो अन्ध-विश्वास और क्रूरता से भरी हुई हैं इस वात का प्रमाण देती हैं कि भीलों की प्रकृति पुराने समय में सिर काटने की अधिक थी। दुश्मनों के सिर काट कर दरख्तों पर लटका देना इनके लिते एक साधारण वात थी।

शकुन, सौगन्द और शपथ—

भील लोग शकुन वहुत देखा करते हैं और सौगन्द शपथ भी किया करते हैं। शादी करने के लिये या अन्य शुभ काम के लिये घर के वाहर निकलते हैं तो पक्षियों का शकुन लेते हैं। रास्ते पर यदि विल्ली रास्ता काट जाय तो अपशकुन माना जाता है। वॉई तरफ देवी पक्षी मीले या उल्लू वोले तो शकुन अच्छा होता गिना जाता है। गॉव से निकलते वक्त दाहिनी तरफ और प्रवेश करते हुए वॉई तरफ मलारिया और भैरव-पक्षी चहचहाते हुए मिलें तो शकुन अच्छा और विपरीत दिशा में मिले तो खराव माना जाता है।

पति पत्नी एक दूसरे का नाम नहीं लेते। ऐसा मानते हैं कि एक दूसरे का नाम लेवें तो अकाल और आपत्ति आती है। कोई भील अन्ध-विश्वास से अपने घर झोंपड़े भी बदलते रहते हैं। शपथ करने की रीति बड़ी रोचक है। साफ सुथरी भूमि पर एक दायरा खींच कर बीच में तलवार रख दी जाती है और उस पर अफीम धरते हैं जिसको शपथ करने वाला अपने मुँह में डाल देता है। कालाजी तथा माताजी के सौगन्द भी ये लोग खाते हैं।

विधर्मी और प्रायश्चित्–

यदि भीलों में कोई विधर्मी हो जाता है तो उसको जाति के बाहर कर देते हैं। जाति में उस वक्त तक वापस नहीं लेते जब तक कि प्रथा के अनुसार प्रायश्चित् न हो जाय। प्रायश्चित् करने का यह रिवाज है कि जलती हुई आग का बर्तन जाति-च्युत-पुरुष के सिर पर रखा जाता है और उससे दण्ड स्वरूप भैंसा या बकरा लिया जाता है।

६ त्यौहार, मेले और नाचकूद

त्यौहार—

रक्षाबन्धन, दशहरा, दीवाली और होली ये चार त्यौहार भीलों में बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। नाच-कूद, सुरापान और रागरंग के साथ त्यौहारों पर मनोरंजन करते हैं, और अच्छा भोजन अपने अपने घरों में बनाते हैं। अच्छे भोजन में चाँवल, बकरे का माँस, लपसी (गुड़ में उबाला हुआ गेहूँ का दलिया)

और चूरमा होता है। धार्मिक त्योहार पर व्रत-उपवास करके देवी-देवता की उपासना करते हैं।

रक्षा-बन्धन को भीली भाषा में 'राखडी' कहते हैं। अन्य हिन्दुओं की भांति-भील जाति में भी बहिन अपने भाई के राखी बाँधती है और भाई बहिन को इच्छानुसार वस्त्र तथा रुपया पैसा देता है। दशहरे के दिनों में जहाँ जहाँ भील आबादी है वहाँ पर देवी की पूजा की जाती है। दशहरे के दिनों में भील भोपा देवी के मन्दिर में एक आसन पर बराबर बैठ कर उपासना करता है और एक मिट्टी के बर्तन में जौ डाल दिये जाते हैं जो नवरात्रि के नौ दिनों में अंकुरित हो उठते हैं। राजस्थान में इन अंकुरित जौ के पौधों को 'जवारे' बोलते हैं। नवरात्रि के दिनों में देवी के स्थान पर भैंसे या बकरे का बलिदान किया जाता है। दसवें दिन भोपा भाव करता हुआ बस्ती के लोगों के साथ ठाठ-बाट से निकलता है और 'जवारे' पानी में छोड़ दिये जाते हैं। दीवाली के दिन जैसा कि आम दस्तूर है दीये घर घर में जलाते हैं और लपसी व चाँवल पकाते हैं। कार्तिक शुक्ला १५ के रोज पूर्वजों की मानता होती है। कुटुम्ब के लोग एक जगह इकट्ठे होकर मद्यपान करके खूब उछलते कूदते हैं उस दिन मृतात्मा किसी भील के शरीर में प्रवेश करती है और 'भाव' आता है। 'भाव' में पूर्वज बोलता है कि मैं अमुक हूं और अमुक पुरुष ने मुझे मारा है इसलिये इसका बदला लूंगा। यदि मारने वाला पुरुष वहाँ होता है तो बड़ा कलह मच जाता है। माघ शुक्ला और भाद्रपद

शुक्ला ६ को भैरव की पूजा मानता की जाती है। फाल्गुन शुक्ला ११ 'आँवली ग्यारस' को भीलों का मुख्य त्यौहार गिना गया है। इस दिन आँवला के पीले फूलों के झाड़ काट कर अपनी पगड़ी में तुर्रे की तरह लगाते हैं और जंगली फूलों की मालाएँ बनाकर पहिनते हैं और जहाँ आस-पास में मेला भरता है वहाँ पर टोली की टोली शराब पीकर बड़ी उन्मत्तता से नाचती हैं इस त्यौहार पर भील जंगल से काष्ठ बिक्री के लिये लाना शुरु कर देते हैं और चतुर्मास तक यह धन्धा विशेष रूप से करते हैं। 'होली' के दिनों में भील स्त्रियाँ जहाँ तहाँ भील प्रदेश में राहगीरों के रास्तों पर खड़ी होकर गीत गाती हैं और जब तक नारियल या गुड़ नहीं मिलता तब तक रास्ते से नहीं हटती। खास होली के दिन होली दहन करते हैं जिसके बाद कई दिनों तक 'गेर' (एक प्रकार का नाच) 'रमते' हैं। जिसका पूरा वर्णन आगे किया जायगा। चैत्र महीने में पार्वती के निमित्त 'गनगौर' का त्यौहार आता है जो राजस्थान में प्रसिद्ध त्यौहार गिना गया है। इस त्यौहार पर पार्वतीजी की काष्ठ की मूर्ति को वस्त्राभूषण से सजाकर नदी या तालाब के किनारे बड़ी धूमधाम के साथ गाते बजाते ले जाते हैं। वैशाख महीने में महादेवजी की स्तुति के लिये जहाँ जहाँ भील बस्ती में शिव-मन्दिर हैं, वहाँ पर मेले भरते हैं।

मेले—

भील मेलों में तीर, कमान और ढाल तलवार लिये हुए नाचने की प्रथा विशेष है। बड़ी रुचि के साथ भील स्त्री और पुरुषों-

दोनों मेलों में भाग लेते हैं और धूमधाम करते हुए पहाड़ों को गुंजा देते हैं। मेले के अवसर पर आमोद प्रमोद तो होता ही है, लेकिन इसके साथ ही इनके अस्त्र-शस्त्र का नकली प्रयोग भी हो जाता है। भील-मेलों में युद्ध-प्रियता और वीरता की अदभुत झलक दृष्टिगोचर होती है। भाद्रपद में स्थान स्थान पर गौरी यानि पार्वतीजी के निमित्त 'गवरी' नाचते है। आँवली एकादशी को मेवाड़ में उदयपुर से दो मील दूर अहाड़ (एक प्राचीन स्थान) गॉव में वड़ा मेला भरता है। चैत्र महीने में गॉव के वाहर देवी देवता के स्थान के सामने निश्चित् तिथि पर मेले लगते हैं, जहॉ सैकड़ों स्त्री पुरुषों की भीड़ लग जाती है। इन मेलों में 'गेर' खेलने के अलावा 'नेजा' भी लगाते हैं जिसमें स्पर्धा और हिम्मत की परीक्षा होती है। इसका विस्तृत हाल आगे के पृष्टों में दिया गया है। चैत्र कृष्णा अष्टमी को 'कालाजी' का मशहूर मेला 'ऋषभदेव' गॉव मेवाड़ में भरता है जहॉ हजारों स्त्री पुरुप एकत्रित होते हैं। प्रातः काल मे 'कालाजी' यानि ऋपभदेव जैन तीर्थंकर को भील सेवा-पूजन करते हैं और सायंकाल को अपने अपने गिरोह वनाकर भीलनियॉ नाचती कूदती हैं। इस मेले पर तीर कमान जो भीलों के मुख्य हथियार हैं विकने को आते हैं और अक्सर भील इस मेले पर तीर कामठी जरूरी खरीदते हैं। डूंगर-पुर मे लीला पानी और सॉवला जी का मेला कार्तिक शुक्ला १५ को भरता है। लीलापानी के मेले पर भील पवित्र जल में स्नान करने जाते हैं और ईडर के मेले मे वैलों की विक्री अच्छी होती है। यह राजस्थान के मेलों का वर्णन है।

गुजरात में भीमकुण्ड स्थान पर जहाँ ७० फीट ऊपर से पानी नीचे गिरता है, बड़ा भारी मेला भरता है। भीमकुण्ड के पवित्र जल मे भील राख डालते है। दाहोद, ताल्लुक झालोद और जेशावाड़ा ग्राम मे चैत्र शुक्ला नवमी को भील सुधारकों ने राम-मन्दिर का मेला लगाना शुरू किया है जहाँ पर भील दर्शन करते है और धर्मोपदेश सुनते है।

नाचकूद–

भील जाति ने अपना अलग अस्तित्व रख कर ग्रामीण गीत और नृत्य की पूर्णतया रक्षा की है। ग्रामीण गीतों और नृत्यों का एक अमूल्य भण्डार इस भारतवर्ष मे भरा हुआ है जिसका अभी तक पूरा अनुसन्धान नहीं हुआ है। ग्रामीण गीत और नाचकूद मे सिर्फ मनोरंजन करने की ही शक्ति नहीं है बल्कि मनुष्य जाति की उच्च भावनाओं को जागृत करने की सामग्री भी मौजूद है। हर्ष, प्रेम और वैराग्य को जीवन मे सचारित करने की अपूर्व शक्ति भील-नृत्य मे पाई जाती है। भील नाचने के बड़े शौकिन है। जिस तरह पाश्चात् देशों के लोग नाच (Dance) से उत्सुकता से भाग लेते है उसी प्रकार भील भी इसमे पूरी रूचि रखते है। ऐसा कहा जाता है कि यदि किसी भीलनी का पति अच्छा नाच न जानता हो तो वह उसको छोड़ कर दूसरे के साथ जो अच्छा नाच जानता हो, ब्याह कर लेती है।

भीलों मे कई तरह के नाच है, किन्तु चार प्रकार के नाच मुख्य देखे गये है यानि विवाद के नाच, 'घण्णा' अर्थात् गेर, 'नेजा'

और 'गवरी' विवाह नृत्यों में 'हाथीमना मशहूर है। इसके अनुसार भील जमीन पर घुटना टेक कर बैठ जाता है और अपने शरीर के चारों ओर नगी तलवार घुमाते हुए नाचता है। दूसरा शादी का नाच इस तरह करते हैं कि दो भील नगी दो तलवार का महाराय बनाकर एक दूसरे के सम्मुख खड़े हो जाते हैं। मह-राव के एक तरफ से स्त्रियों का झुण्ड और दूसरी तरफ से पुरुषों का झुण्ड एक साथ अपना कदम उठाते हुये आगे पीछे हटते जाते है और गीत गाते जाते हैं तथा हाथों से तालियाँ भी बजाते रहते हैं। तीसरा शादी का नाच बहुत सादा है। चतुष्कोण की दो लकीरें एक दूसरे से मिलती हुई बना कर एक लकीर मे पुरुष और दूसरी मे स्त्रियाँ खड़ी हो जाती हैं। पुरुष का हाथ और स्त्री अपने पास वाली स्त्री का कधा पकड़े हुए, एक साथ अपने पैरों को उठाये हुए चारों दिशाओं मे घूमते हुये नाचते कूदते हैं और बीच २ मे हाथ छोड़ कर जोर से तालियाँ बजाते हैं। इसका दूसरा रूपान्तर यह है कि लाइन मे खडे होकर फाईल मे एक दूसरे की कमर पकड़ कर भी खडे हुए नाचते हैं।

घरणा यानी गेर:—

स्त्री और पुरुष अलग अलग अपने अपने झुण्ड बनाकर 'गेर' खेलते है। स्त्रियाँ अर्द्ध चन्द्राकार में एक दूसरे का हाथ पकडे हुये खड़ी हो जाती हैं। तीखी आवाज के साथ सुरीला गीत गाती हुई, एक साथ अपना कदम उठाती हुई, कमर झुकाती हुई स्त्रियों का नाच देखते ही बनता है। बीच बीच मे हाथों से

तालियाँ बडे जोर से पीटती हैं जिससे पीतल की चूड़ियों की आवाज गीतों के राग मे स्पष्ट सुनाई देती है। जो स्त्रियाँ गेर मे भाग लेती हैं वे 'गेरिये कहलाती हैं। दोनों एक साथ जुदा जुदा नाचते कूदते हैं, लेकिन ढंग एक दूसरे से भिन्न है। गेरिये ढोल और मादल बजाने वालों के इर्द गिर्द पतली छड़ियाँ तथा तीर धुणी और ढाल, तलवार लिये हुए एक गोल चक्र बनाकर खड़े हो जाते हैं। ढोल और मादल बजना शुरु होते ही नाच आरम्भ हो जाता है। गेरिये उछलते कूदते हुवे अपने आजू बाजू वाले पुरुष की छड़ियों से अपनी छड़ियों को, बारी बारी से टकराते हुये नाचते है जिससे बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है और यह ध्वनि ज्यों ज्यों ढोल और मादल जोर से बजता जाता है, त्यों त्यों छड़ियों की टक्कर भी जोर शोर से सुनाई देती है। बीच बीच मे कुछ गेरिये जमीन पर बैठे हुये भी गेर रमते हैं लेकिन टकराने का क्रम उनका वही जारी रहता है बैठ जाने से चूक नहीं पड़ती। गेर घन्टा आध घन्टा से अधिक नहीं होती और इस बीच मे भी कभी कभी जोर से 'किल्कारी' (आवाज) करते है। घेर मे एक साथ छड़ियों को घुमाते हुए, बदन को झुकाते और ढोल तथा मादल के स्वर से छड़ियों के टकराने की आवाज को मिलते हुए, कभी कभी नंगी तलवारों को बीच मे खड़ी किये हुये किल्कारी करते हुये, जब भील नाचते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि चारों ओर से बादल छा गये है और गर्जना हो रही है और जब चम-चमाती हुई तलवार ऊपर आकाश की ओर उठती है तब बिजली

चमकने का ही आभास होता है। राजस्थान के बाहर के रहने वाले लोगों को 'गेर' का अर्थ समझाने के वास्ते यह कहना पर्याप्त होगा कि जिस तरह आगरे के लाला लोग विजयादशमी आदि त्यौहारों पर एक वृत्त बाँधकर छोटे छोटे डंडे लड़ाते हैं उसी तरह भील गेर खेलते हैं।

नेजा:—

होली के बाद भील-प्रदेश में आबादी के नजदीक जहाँ देवी-देवता का अच्छा विस्तृत स्थान हो वहाँ पर एक दिन के लिये मेला भरता है। सैकड़ों की संख्या में स्त्री पुरुष एकत्रित होते हैं। सबसे पहले देवी-देवता के स्थान पर भोपा बैठता है और उसको 'भाव' आता है। वह मोरपंख के झाड़ू से 'नेजा' में भाग लेने वालों की पीठ ठोकता है जिसका यह अभिप्राय है कि नेजा आरम्भ करने की आज्ञा हो चुकी है। आज्ञा शिरोधार्य करके, स्त्रियाँ जहाँ खजूर या सेमर या कोई दूसरा बड़ा वृक्ष हो उसके समीप घेरा डालकर हाथ में बांस की लम्बी लम्बी छड़िये लिए हुये खड़ी हो जाती हैं और पुरुष उनके सामने दो सौ चार सौ कदम दूरी पर हाथ मे मोटी लकड़िये लिये हुये तैयार रहते है। वृक्ष के सबसे ऊँचे भाग पर सफेद या लाल वस्त्र मे एक रुपया और नारियल बाँध देते हैं जिसको 'नेजा' कहते हैं। पुरुषों का दल एकबारगी नेजा की तरफ धावा करता है जिसको स्त्रियाँ हरे बाँस आगे किये हुए रोकती हैं। इस तरह सात धावो होते है जिनमें से छ बार स्त्रियाँ रोककर सातवीं बार पीछे हट जाती हैं। फिर पुरुष वृक्ष के

नीचे पहुँच कर लटकाया हुआ नेजा उतारने का उद्योग करते है। हरएक पुरुष यह चाहता है कि वह सबसे पहले चढकर नेजा उतार लाय। बड़ी स्पर्धा रहती है। कोई वृक्ष पर चढ ही नहीं पाता; कोई आधे राह पर से ही नीचे गिर पड़ता है और कोई दो चार मुश्किल से ऊपर पहुंचते है। जो सबसे ऊपर पहुँच कर सबसे पहले 'नेजा' उतार लाता है उसकी बड़ी प्रशसा होती है और रुपया नारियल उसी को पुरस्कार मे मिलता है। नेजा किसी बल्ली या बॉस पर भी लगाते हैं और उसको तीर या बन्दूक से दूर खड़े हुये भील गिराने की कोशिश करते है। जो सबसे पहले अपने तीर या बन्दूक की गोली से नेजे को नीचे डाल देता है उसकी वाहवाही होती है। 'नेजा' भीलों का एक नकली स्पर्धा-जन्य युद्ध है, जिसमें वीरता और साहस का प्रदर्शन होता है।

गवरी—

'गवरी' नृत्य भाद्रपद मे गौरी यानी पार्वतीजी के निमित्त होता है। जिस दिन गवरी जिस गॉव मे नाचना हो उसके पहली रातको गौरी-स्थापना करके जागरण करते है। गौरी की पूजा करके स्त्री और पुरुष गाते हैं और ठेकते (नाचते-कूदते) है। गीत का पहला पद स्त्रियॉ बोलती हैं जिसका उत्तर पुरुष दूसरा पद बोलकर देता है। यहॉ घंटों तक भक्तिपूर्वक गायन होना है जिसके साथ नाचकूद भी रहता है। स्त्री और पुरुष का वर्ग एक श्रेणी मे खड़े हुए गीत गाते जाते है और एक साथ एक पैर का घुटना उठाये हुये ठेकते है। जब स्त्रियॉ गाती है और ठेकती है तब पुरुष चुप-

चाप खड़े रहते हैं और जब पुरुष गाते हैं और ठेकते हैं तब स्त्रियाँ खामोश हो जाती हैं।

दूसरे दिन सवेरे किसी अच्छे मैदान में एक वांस या बल्ली को गाड़ कर 'गवरी' करने वाले पुरुष लम्बे लम्बे घेरदार अंगरखे और गले में रूमाल पहिने हुये उस बल्ली या बाँस के चारों ओर गोलाकार में खड़े हो जाते हैं। इनको 'केले' कहते हैं। इनमें से जो पुरुष स्त्री का स्वाँग करते हैं जिनको 'राई' कहते हैं। राई नई साड़ी, नया लहंगा और अन्य आभूषण पहिने होते हैं और मुँह ढका होता है सिर्फ नाक और आँखें खुली हुई होती हैं। वृत्ताकार के बाहर एक पुरुष 'राईबूढा' और दूसरा 'कूट करिया' रहता है। 'राई बूढा' के एक गोल नकली लकड़ी का चेहरा होता है जिसके लाल पन्नी, लम्बी पूँछ और लम्बे लम्बे दाँत लगे हुए होते हैं। नाक और आँख की जगह खाली होती है जिसके द्वारा सांस लेने और देखने की क्रिया होती रहती है। राई बूढा के हाथ में नकली लकड़ी की तलवार और कमर में घूघरे बँधे होते हैं। इस 'राई बूढा' से जब तक स्वाँग तैयार न हो जाय तब तक एक हंसोड़ जिसको 'कूटकरिया' कहते है हंसी दिल्लगी करता रहता है। कूटकरिया राई बूढा को 'साँभलो साँभलो' (सुनो, सुनो) कहके बार बार छेड़ता है और हंसी मजाक करता जाता है जिससे राई बूढा को क्रोध आता है और वह नकली तलवार उठाते हुये और घूघरा छन छन बजाते हुये कूटकरिया को मारने को दौडता है। यह गवरी का हास्यप्रद भाग होता है

जिसको 'कोमिक' (Comic) कह सकते है। जब तक यह हंसी दिल्लगी होती रहती है तब तक 'केले' धीरे धीरे गाते हुये बांस के चारों तरफ घूमते है और कुछ लोग ओट मे होकर स्वांग बनाते है। बास के पास ढोली मादल बजाने के लिये तैयार रहता है। ज्योंही स्वाग आने की उम्मीद होती है त्यों ही मादल, ढोल जोर शोर से बजाने लगता है और इसके साथ साथ केले, राई बूढा और राइयॉ सब मिलकर हाथों और पैरों को बडी खूबसूरती के साथ झुकाए हुए नाचते है। जब स्वॉग घेरे मे जाता है तो मादल बजना बन्द हो जाता है और स्वॉग लाने वाले अपना वाद विवाद प्रारम्भ कर दर्शकों को आल्हादित करते है। अन्त मे भोपा को भाव आता है और वह स्वॉग करने वालों पर मोर पंख फेरता है जो उनकी रक्षा के निमित्त समझा जाता है। इस प्रकार सारे दिन भर कई स्वॉग बनाये जाते है जिनमे मुख्य चोर और बनजारा जोगी, भूत, भील और बनिया शेर, बन्दर और युद्ध के होते है। शिव इस नृत्य मे 'राई बूढा' के रूप मे दिखाई देते है।

गवरी नृत्य में सिर्फ नृत्य ही नहीं, किन्तु इसके साथ नाटक का भी सम्मिश्रण होता है। आजकल के नाटक और सिनेमा मे इसको अधिक स्थान दिया जाय तो विशेषोक्ति नहीं होगी। नाटक और सिनेमा रात को होता है जिसमे कई दूषण छिप जाते है लेकिन गवरी नृत्य दिन दहाड़े खुली हुई जगह मे किया जाता है जहॉ यदि कोई एब हुई तो तत्काल ही नजर आ जाती है। दूसरी बात जो नाटक और सिनेमा से अधिक गवरी नृत्य मे मिलती है

वह है— स्वाभाविकता। बूढिया (राई बूढा) के नृत्य करने की दिशा, अन्य अभिनताओं में उल्टी होती है जिसका अर्थ है कि वह समस्त विश्व में समाविष्ट होते हुए भी वितग है। इस सुन्दर और प्राचीन नृत्य के पीछे, भील-जाति की जवरदस्त धार्मिक भावना काम करती है। धनो-पार्जन के उद्देश्य से वे नहीं नाचते। उनका त्याग और उनके जातीय संगठन ही उन्हें, यह महत्वपूर्ण कार्य करने को प्रेरित करते है। महीने भर तक, अपना काम काज छोड़कर, केवल जनता के मनोरंजन के लिये गॉव गॉव नाचना, उनके हृदय की महानता और सरलता का ही परिचायक है।

१०—गीत और कहावतें

राजपूताना में भीलों के वारे में यह कहावत मशहूर है:-

"कई चारण री चाकरी, कई एरण री राख
कई भील रो गावणों, कई साठियाँ री साख"

उपरोक्त कहावत का यह अर्थ है कि चारण (राजस्थान के राजकवि) की चाकरी, लूहार की भट्टी की राख, भील का गाना और साठिया (एक प्रकार की जाति) की साख मे क्या रखा है यानि व्यर्थ है। यह कहावत भीलेतर लोग सच नहीं मानेगे और भीलेतर भी जो भीलो के गीतों को समझते हैं शायद ही इस कहावत मे विश्वास रखते हों। भीलों के ग्रामीण-गीतों मे प्राचीन ओजस्वी इतिहास, अपूर्व वीरता और प्रचुर आमोद-प्रमोद

का एक विशाल कोष भरा पड़ा है। इनके गीतों मे ताल-चन्दी और तुक-चन्दी की मात्रा अधिक है; भाषा सरल है और एक एक पद बार बार बोला जाता है। वीरता, प्रेम, औ प्रहसन के कई गीत है। जितना वीरता के गीतों में वीर रस है उतना ही प्रेम के गीतों मे माधुर्य और धर्म के गीतों मे उच्च-आध्यात्मिक-विचार। प्रहसन के गीत भी बड़े ललित होते हैं और वे विवाह आदि के अवसरों पर गाये जाते हैं। भील और भीलनियाँ जब दूर गाँव या शहर से लौट कर शाम को घर थकी माँदी आती हैं तो रास्ते में गीत गाती हुई मनोरंजन करती हैं। एक पद पुरुष कहता है और दूसरा स्त्री, इस तरह हँसी खुशी में अपना रास्ता तय कर लेते हैं।

सबसे पहले पाठकों के सामने वह गीत रक्खूँगा जिसमें भील-स्वभाव का चित्रण किया गया है।—

मरियु लई ने कामठी लई ने, वागड़ माँ अमु फरिये रे,
मणखाँ मारी डगरा मारी, वागड़ माँ अमु राजा सिये रे,
सोर करी लोकों लूटी ने, नाणा पेस्या लावहुँ रे,
गडरा ने बोकड़ा मारी ने, तीनु माह खाहु रे।
महुड़ा नाली हरो पीने, कीरी आरी करी नाचहुँ रे।
मन मा फावे तेम फरी एनी, खाई पी मजा करिये रे।

भावार्थः—

भील अपने आपको कहता है कि मै तीर और कमान लेकर वागड़ प्रदेश मे फिरूँ और वहाँ पर मनुष्य और जानवरों को मार

कर वहाँ का राजा वन जाऊँ। चोरी कर के और लोगों को लूट करके नाज और पैसे लाऊँ और मवेशियों को मारकर तीनों महीने तक खाऊँ। महुआ की भट्टी निकाल कर उसकी शराब पी करके किल्कारी करके नाचूँ। मन आवे वहाँ पर फिरूँ और खा पीकर मौज करूँ।

राजस्थान मे विक्रम सवत् १९५६ में वड़ा भारी अकाल पड़ा था जिसमें कई मनुष्य और मवेशी मर गये थे, उस वक्त का वर्णन करते हुए भील कहता है।—

गड़ी आलो गड़ी आलो, कामठी गड़ी आलो रे।
पड़िया कोरे काले, मामा तीर गड़ी आलो रे।
सपनिया हरको काले, मामा तीर गड़ी आलो रे।
नदियाँ टूटा नीरा, मामा तीर गड़ी आलो रे।
कोठार खूटा धाने, मामा तीर गड़ी आलो रे।
खाणाँ खूटा महुआ, मामा तीर गड़ी आलो रे।
मगरा खूटो सारो, मामा तीर गड़ी आलो रे।
लछमी मरवा लागी, मामा तीर गड़ी आलो रे।
मानवी मरवा लागा, मामा तीर गड़ी आलो रे।
छोरा मरवा लागा, मामा तीर गड़ी आलो रे।

भावार्थः—

भील अपने मामा को सम्बोधन करके कहता है कि हे मामा! मुझको कमान और तीर गड़ कर दे ताकि मैं चोरी करने को जाऊँ।

छप्पन का घोर अकाल पड़ा है; नदियों का पानी टूट गया है; कोठार का नाज खाली हो गया है. महुए और खाने की वस्तुएँ भी बीत चुकी हैं. पहाड़ भी सूख गये हैं. मवेशी भी मर गये हैं। मवेशी ही नहीं किन्तु मनुष्य और बच्चे भी मरने लग गये हैं।

दूसरा गीत इसी प्रकार का मुझे श्रीयुत् देवेन्द्र सत्यार्थी से प्राप्त हुआ जिसका भाव ऊपर के गीत से मिलताजुलता है। यह गीत बाँसवाड़े की तरफ का है। इसमे मामा को सम्बोधन न करके राजा को सम्बोधन किया गया है।

पड़ती सानो सपना रे, दुखिया राजा
नगरा लूटो सारो रे, दुखिया राजा।
नदियाँ टूटा नीरा रे, दुखिया राजा।
खाणाँ टूटा महुड़ा रे, दुखिया राजा।
लखमी मरवे लागी रे, दुखिया राजा।
धान खूटा कोठारा रे, दुखिया राजा।
कबली खूटा कोहरा रे, दुखिया राजा।
खाई वे खूटी मको रे, दुखिया राजा।
दुनिया डगवा लागी रे, दुखिया राजा।

भावार्थ—

हे राजा छप्पन के साल घोर अकाल पड़ा है जिससे सारा नगर उजड़ हो गया है। नदी का पानी सूख गया है, महुड़ा का खाना भी खतम हो गया है; मवेशी भी मरने लग गये हैं,

कोठार का नाज भी खूट गया है। कोदरा, कवली निकृष्ट नाज भी नहीं रहा और मक्का भी खाते खाते खतम हो चुका है और धनी लोग भी डगमगाने लग गये है।

स्त्रियों के गीत प्रेम से सने हुए हैं इनके गीतों में शृंगार रस का अंश है। स्त्रियों के चार गीत नीचे लिखे जाते हैं जिनमे से अन्तिम तीन श्रीयुत् देवेन्द्र सत्यार्थी से प्राप्त हुए हैं।

राजस्थान में वस्त्रा भूपण का वहुत रिवाज है और वस्त्र से भी गहने का शौक अधिक है। जब पति परदेश जाता है तो पत्नी जेवर या वस्त्र लाने के वास्ते कहती है। भीलनी भी अपने प्रियतम से वस्त्राभूपण लाने के लिये कहती है—

'रे परना एक दाण वम्बई जो तो, वोरियु लावजो रे लो।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, राखड़ी लावजो रे लो।
रे परना एक दाण पहिनार, दो दाण पहिनार, जांजो
बगरो लावजो रे लो।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो टोटियाँ लावलो रे लो।
रे परना एक दाण पहिनार० लावजो रे लो।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, आठानियाँ लावजो
रे लो।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, नथडी लावजो रे लो।
रे परना एक दाण पहिनार० लावजो रे लो।
रे परना एक दाण वम्बई जो लो, साकली लावजो रे लो।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, कापड़ो लावजो रे लो।

रे परना एक दाण पहिनार० लावजो रे लो ।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, हाडी लावजो रे लो ।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, घाघरो लावजो रे लो ।
रे परना एक दाण पहिनार० लावजो रे लो ।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, पिंजणिया लावजो रे सो ।
रे परना एक दाण वम्बई जो तो, फोलडिया लावजो रे लो ।
रे परना एक दाण पहिनार० लावजो रे लो ।

भावार्थ—

इस गीत मे एक भील स्त्री अपने शरीर के जेवर और वस्त्र की चर्चा करती है। वह कहती है कि हे प्रियतम ! यदि वम्बई एक वार जाओ तो मेरे लिये सिर पर गूथने का वोर, राखड़ी कान में पहिनने की टोटियॉ और ओगनियॉ, नाक की नथ, गले की हँसली और सॉकल, पैरो की पैंजनियॉ और फोलड़ियॉ अवश्य लाना और वस्त्र मे चोली, साड़ी और लहगा जरूर लाना। हे प्रियतम ! इन वस्त्रभूपणों का भारी झगड़ा लग गया है। एक वार दो वार इनको ला कर मुझे पहिनाना।

दूसरा गीत स्त्री अपने प्राण-वल्लभ के वारे मे कहती है जो नीवू और अनार के वृत्त की छाया मे सोया हुआ है—

लीम्वू तलान व अनार तलान
शाम सोई गयो वालम लीम्वू तलान ।
पागॉ वॉधे लीम्वू तलान
तिलो रुलायो अनार तलान ।
शाम सोई गयो वालम लीम्वू तलान ।

भावार्थ–

नींबू और अनार के पेड़ के नीचे मेरा स्वामी सोता है। नींबू के वृक्ष के नीचे पाग बाँधता है और अनार के वृक्ष के नीचे पाग का पल्ला पड़ा हुआ है। मेरा स्वामी नींबू के वृक्ष के नीचे सोता है।

शृंगार रस के निम्न लिखित दो गीत गुजरात के भीलों में गाये जाते हैं इनमें मदिरा और नाच कूद का वर्णन है जो भीलों को बहुत प्रिय है—

कड़वा लीम्बू डाल एक डाल मीठूँ रे।
मारो धणी रंगीलो।
मांहे रमु में टीलड़ी वाली,
मारो धणी रंगीलो।
थोड़ो पीतो घणो सरियो,
मारो धणी रंगीलो।

भावार्थ–

भीलनी बोलती है कड़वे नींबू की मीठी डाली के निचे मेरा रंगीला पति है जहाँ पर मैं टीलडी लगाई हुई उसकी स्त्री रमण करती हूँ। शराब थोडा पिया लेकिन बहुत चढ गया, खूब पियक्कड़ मेरा पति हो गया। इस गीत मे अतिशयोक्ति है। नींबू की डाल कभी मीठी नहीं होती, किन्तु स्त्री का प्रियतम पास होने से नींबू की डाली मीठी मानी गई है।

'आवो आवो रे सोरियो, घूमसी रे लो ल।
काका बाबा नी सोरियो, घूमसी रे लो ल॥

आँखयो नी काजल, रली रली जाय ।
कापड़ी ना फूंदा, नमी नमी जाय ॥
आवो आवो रे सोरियो, घूमसी रे लो ल ।
रिसाई ना जाजोरे मोरियो, घूमसी रे लो ल ॥
दारु लावो रे सोरियो, पी घूमसी रे लो ल ।
आवो आवो रे मोरियो, घूमसी रे लो ल ॥

भावार्थ—

एक युवा स्त्री अपने काका-बाबा की लड़कियों को बुला कर नाचने के वास्ते कहती है 'आओ ! आओ ! छोकरियां हम खूब नाचें। इस तरह उन्मत्त होकर नाचें कि आँखों की काजल बह-बह करके निकल जाय और चोली का फुंदा झुक-झुक नीचे गिरता जाय। हे लड़कियों तुम गुस्से होकर चली मत जाना। शराब लाओ और फिर हम सब खूब नाचें कूदें।

शादी के गीतों मे हँसी और दिल्लगी की बातें है । सब से पहले जब विवाह 'मँडता' है तब पीठी पानी उबटन करके वर को पाट पर बिठाकर उछालते हैं और रमाते हैं। इसको 'मोरियु रमाना' कहते हैं जिसका वर्णन पहले विवाह संस्कार के अध्याय मे किया जा चुका है। गीत मोरियु रमने का इस प्रकार है :—

केना केना राज मे, मोरीया थई थई रे ।
पिताजी ना राज मे, मोरीया थई थई रे ॥
हूंस करी ने रम रे, मोरीया थई थई रे ।
माताजी ना राज मे, मोरीया थई थई रे ॥

काकाजी ना राज में, मोरीया थई थई रे ।
हूंस करी ने रम रे, मोरीया थई थई रे ॥
केना केना राज में, मीरिया थई थई रे ।
काकाजी ना राज में, मोरीया थई थई रे ॥

भावार्थ–

स्त्रियाँ दूल्हे को पाट पर विठा कर 'मोरीया' रमाती हैं और कहती हैं कि 'उल्लास के साथ तू रम' माता–पिता, काका के राज में तू उल्लास के साथ थई थई करते हुए मोरीया रम।

दूसरा गीत कन्या–पक्ष की स्त्रियाँ जब बरात कन्या के घर के वाहर आती है तव गाया करती हैं।

'रुप्या लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ।
टीलड़ी लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ॥
पलट्ट लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ।
दारु लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ॥
गुगरी लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ।
रुपया लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ॥
मोड़ीला लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ।
पाघड़ी लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार ॥
हाला कटारी लाजो वे तो लाव, ने तो रीजे झाँपा वार' ।

भावार्थ–

स्त्रियाँ वर पक्ष के पुरुषों को कहती हैं कि यदि रुपया, टीलड़ी, वस्त्र, शराब घूघरी, मोड़, हाला कटारी (दस्तूर के पैसे) लाये हों

तो घर के अन्दर आना वरना घर के बाहर ही रहना।

वर-वधू का हथलेवा जोड़ने के समय स्त्रियाँ प्रेम का यह गीत गाती हैं :—

रे पीता काठो हाथ हाजे पीता तान-मान मालया पीता ।
रे पीता खेतलो परणी जाहे पीटा तान-मान मालया पीता ॥
वींद कोड़ा सावे ने लाड़ी फेरा फरे रे ।
वींद काठो हाथ हाजे नेतो खेतलो परणी जाहे रे ॥

भावार्थ—

स्त्रियाँ कहती हैं कि हे दूल्हे ! तू अपनी दुलहिन का हाथ मजबूत पकडना ताकि तन और मन दोनों मिल जाँय। कहीं ऐसा न हो कि खेतला (सालि ग्राम एक गोल पत्थर जो कन्या और वर के हाथों के बीच में हथलेवा जुड़ाते वक्त रखा जाता है) बीच मे शादी कर ले। हे दूल्हा ! दुलहिन फेरा फिरती है सो कोड़ा उठा (जब फेरा फिरते हैं तब हँसी मजाक के लिये वर के हाथ मे व कन्या के हाथ मे कोडे दे दिये जाते हैं और वर वधू एक दूसरे को मारते हैं)।

स्त्रियाँ अपने सम्बन्धियों को उलाहना देती हैं जिसमे बडा मनोरंजन होता है इस प्रकार का एक गीत नीचे उद्धृत किया जाता है।

रड ने केवा बोलो रे, तम रामूड़ी आवणुँ पड़े हे।
धुलवो है वेवाई रे, तम रामूडी आवणुँ पडे हे।
रामूड़ी है वेवाण रे, तम रामूड़ी आवणुँ पड़े हे।

मगदू हे वड़ हाली रे, तम रामूड़ी आवणु पड़े हे ।
कुण पटेल वाजे रे, तम रामूड़ी आमणु पडे हे ।
कुण कामदार वाजेरे, तम रामूड़ी आवणु पड़े हे ।
रामूड़ी आरी थाजीरे, तम रामूड़ी आवणु पड़े हे ।
आँख भाँपणिया करे रे, तम रामूड़ी आवणु-पड़े हे ।

भावार्थः—

इस गीत में रामूड़ी और उसका पति जो दोनों सम्बन्धी हैं उनके वास्ते स्त्रियाँ गाती हैं कि टीड़ी नाम के तालाव पर धूलिया रामूड़ी को बुलाता है और धूलिया रामूडी को देखकर उस पर कक्कर फेंकता है और आँखों की भौंहे चढाता है। उस टीड़ी गाँव में मगदू वड़ हाली है।

अन्तिम गीत विवाहोपरान्त खुशी की दावत जिसको 'मनवेर' कहते हैं के अवसर पर गाया जाता है। वह इस प्रकार है।

वेवाई थारी रोटी सम्भालो, अम पड़जिया रोटी नहीं खाता रे।
वेवाई थारी रोटी सम्भालो, अम वासीय रोटी नहीं खाता रे।
वेवाई थारी दाल सम्भालो, अम वासीय दाल नहीं खाता रे।
वेवाई थारी लापसी सम्भालो, अम वासी नहीं खाता रे
वेवाई थारा सोखा सम्भालो, अम पड़जिया सोखा नहीं खाता रे

भावार्थः—

स्त्रियाँ गाती हुई कहती हैं कि हे सम्बन्धी! तुम अपनी ठंडी और वासी रोटी दाल, लपसी, चूरमा और चांवल को रहने दो हम ऐसा ठंडा और वासी भोजन नहीं करतीं।

धार्मिक-गीतों में आत्मा और परमात्मा दोनों का उल्लेख है। भजन, आरती, प्रार्थना ये सब धार्मिक-गीतों मे मिलते हैं। तीर्थ-यात्रा का भी वर्णन आता है।

भजन

नदी रे किनारे वाला केवड़ारे भाई, जग जद झोला खाई।
एक दिन ऐसा आवजे रे भाई, पवन सुँ उड़ जाई।
प्राणिया सेतन रेना भाई।
सेतन रेना पार लगेला सेतन पार लगेला।
अणीं मारग मूँ जाई सेतन रेना भाई।
काया तो थारी आसी वणी भाई गेरी गेरी फूलड़ा छाई।
एक दिन ऐसा आवजे रे भाई पवन सूँ उड़ जाई।
प्राणिनां सेतन रेना भाई।
सेतन रेणा पार लगेगा, अणे मरग मूँ उड़ जाई।
प्राणिया सेतन्न रेना भाई।
ऊमर मारी ओसी लखावी, पाप मत मत भाई।
एक दिन ऐसा आवजे रे भाई मार कूट सब जाई।
प्राणिया सेतन रेना भाई।
सेवन रेना पार लगेगा अणे मारग सूँ जाई।
प्राणिया सेतन रेना भाई।
दोई कर जोड़ी गोविन्द राम बोले भव सागर टर जाई।
प्राणिया सेतन्न रेना भाई।
सेतन रेना पार लगेला अणे मारग सूँ जाई।

भावार्थ:—

इस भजन में आत्मा को नदी के किनारे उगे हुए केवड़े की तरह माना है। जिस तरह केवड़ा हवा के झोंके से इधर उधर हिलता है और आँधी आने पर उड भी जाता है। उसी तरह यह आत्मा भी संसार में इधर उधर डोलती फिरती है और एक दिन काल चक्र में आकर शरीर को छोड कर भाग जाती है, इस वास्ते कहते हैं कि हे प्राणी! हमेशा सचेत और सावधान रह। यदि सावधान और सचेत रहेगा तो इस संसार-सागर से पार हो जायगा। हे प्राणी! तेरा शरीर फूलों की तरह है जो एक दिन पवन के लपेटे मे आकर उड़ जायगा। ससार में थोड़े दिन जीवित रहना है इस लिये तू पाप मत कर। एक दिन मौत आवेगी तब मार कूट कर चली जायगी। गोविन्द राम दोनो हाथ जोड़ कर कहता है कि जो प्राणी सचेत और सावधान रहेगा वह इस भव सागर से पार हो जायगा।

आरती

आरतो भरतार नी एक माई ना मंदिर में।
आरती भरतार नी एक माई ना मंदिर मे।
बोलो सदा आरती।
पेली पेली आरती पाताला जावे है। "बोलो"
दूजी दूजी आरती पेलाद राजा जावे है। "बोलो"
तीजी तीजी आरती हरी सनराजा जावे है। "बोलो"

चोथी चोथी आरती मालजी जावे है। "बोलो"
पॉचवी पॉचवी आरती सूरज राजा जावे है। "बोलो"
सटी सटी आरती चन्द्रमा ने जावे है। "बोलो"
दोई कर जोड़ी गई मीरां बोला सती अमरा पुर पाया है।
"बोलो"

भावार्थ—

माताजी के मन्दिर मे जो आरती बोलते है। तो पहली आरती "पाताल देवता दूसरी आरती प्रहल्लाद राजा तीसरी आरती हरिशचन्द्र राजा चौथी आरती मालजी, पॉचवी आरती सूर्य्य देवता और छठी आरती चन्द्र देवता की करते हैं। मीरां बाई कहती है कि जो दोनो हाथ जोड़ कर आरती करता है उसको स्वर्ग मिलता है।

प्रार्थना (१)

मारी मा हाउ राखजो
मारी माक्होल खेम राखजो
मारी मा हाजो ताजो राखजो

भावार्थः—

यह प्रार्थना भील अगाट पर अपने पूर्वजों के सन्मुख भेंट चढ़ाते हुए बोलता है और कहता है मेरी माता! मुझको अच्छा रखना, कुशल क्षेम से रखना और हृष्ट पुष्ट रखना।

प्रार्थना (२)

जी सड़ावुं ती भोग लीजो मारा वाप वावसी
जी सडावुं ती भोग लीजो मारी माँ ।

यह प्रार्थना भी अगाट पर वोली जाती है जिसका सामान्य अर्थ यह है कि मेरे वाप, हे मेरी माँ, जो मैं भेट चढाऊँ उसको मानना और उसका भोग लेना ।

तीर्थ—गीत—

कालो देव केशरिया, तीरत जाई रे जाई मुं ।
भूलेवा ने हाटा, तीरत जाई रे जाई मुं ।
आटुड़ी नुं कुँवर, तीरत जाई रे जाई मु ।
आटुड़ी माटुड़ी, तीरत जाई रे जाई मु ।
भारी वोलमा वोले, तीरत जाई रे जाई मु ।
कुँवरयु वसे ने, तीरत जाई रे जाई मुं ।
सवा सौ गाड़ियाँ, तीरत जाई रे जाई मुं ।
सवा सो घोढ़िला, तीरत जाई रे जाई मुं ।
आटी वाईनु कुँवर, तीरत जाई रे जाई मु ।
हाथीड़ा पलानो, तीरत जाई रे जाई मुं ।
कालो जी केशरिया, तीरत जाई रे जाई मु ।
पगल्याजी ना तीरथ, तीरत जाई रे जाई मुं ।
भारी वोलमा वोलो, तीरत जाई रे जाई मुं ।
कुँवरयुं वसे ने, तीरत जाई रे जाई मु ।

भावार्थ–

यह गीत केशरिया नाथ मेवाड़ के मशहूर तीर्थ स्थान सम्बन्धी है। भील केशरिया नाथ को मानता है। भील कहता है कि काला देव यानि केशरिया नाथ के तीर्थ को मैं जाऊँगा। आदुड़ी का कुँवर जहाँ वसता है उस तीर्थ स्थान को मैं जाऊँगा। पगल्याजी यानी कालाजी के चरण जहाँ हैं वहाँ पर तीर्थ करने जाऊँगा। सवासो घोड़ों को,सवा सो हाथियों को सजाओ और सवासो गाड़ियों को तैयार करो। मैं तीर्थ यात्रा करने जाऊँगा।

अन्तिम घेर का गीत (Ballad) उद्धृत करके गीतों को समाप्त किया जाता है। यह अन्तिम गीत वीरता और बहादुरी से भरा हुआ है :—

मौ ने मुड़ेटी, हुरमा सौंवाणे रे ।
वात वेटा नो कजीओ लागो, हुरमा सौंवाणे रे ।
भीणो कजीओ लागो, हुरमा सौंवाणे रे ।
मोटो राजा वाजे, हुरमा सौंवाणे रे ।
हॉसु आठु राजा 'वाजे, हुरमा सौंवाणे रे ।
हॉके जमी रे पाली ना, हुरमा सौंवाणे रे ।
वली तेनो कजीओ लागो, हुरमा सौंवाणे रे ।
भारी कजीओ लागो, हुरमा सौंवाणे रे ।
हांसु वांदो कोणे काड़े, हुरमा सौंवाणे रे ।
आवे ईडरे महा राजा, हुरमा सौंवाणे रे ।

तो ते वांदो कोणे काड़े, हुरमा सौंवाणे रे ।
के ज्यूं ने नहीं माने, हुरमा सौंवाणे रे ।
वारवेटे निकल ज्यो, हुरमा सौंवाणे रे ।
हॉसुं क्या कुँवर जाय रे, हुरमा सौंवाणे रे ।
हॉ के मगरा मांह् फारकी, हुरमा सौंवाणे रे ।
त्यां ने कुँवर जाय रे, हुरमा सौंवाणे रे ।
वाखेटे जाय रे हुरमा सौंवाणे रे ।
हॉ के त्यॉ ने राजा जाय रे, हुरमा सौंवाणे रे ।
पायगे वणावे, हुरमा सौंयाणे रे ।
वले पायगे छुड़ावे, हुरमा सौंवाणे रे ।
वले घोड़ीला वन्दावे, हुरमा सौंवाणे रे ।
मगरा मॉहे फारकी, हुरमा सौंवाणे रे ।
वले त्यां तो गढ चणावे, हुरमा सौंवाणे रे ।
स्वार सौ महीना रे, हुरमा सौंव णे रे ।
कुँवर आढी लोये, हुरमा सौंवाणे रे ।
ढाल के तरवारा, हुरमा सौंवाणे रे ।
लडाई करवा उठतो, हुरमा सौंवाणे रे ।
माड वड़ाग वोलावे, हुरमा सौंवाणे रे ।
हॉ के घोड़ीला पलाणों, हुरमा सौंवाणे रे ।
वली काठा तगे भीड़ो, हुरमा सौंवाणे रे ।
कुँवर जड़ाई जाय रे, हुरमा सौंवाणे रे ।
आवे मुडेटी जाई लागो, हुरमा सौंवाणे रे ।

भारी कजीओ लागो, हुरमा सौंवाणे रे।
हॉके राजा मेला वेटे. हुरमा सौंवाणे रे।
त्यां ने लडाई थाय रे हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे राजा जालम हींग जी, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे तीतं गोखड़ा वेठे, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे वले हाथ माय वंदूके, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे भारी लड़ाई थायरे, हुरमा सौंवाणे रे।
वन्दूको नी धामा रोलो उड़े, हुरमा सौंवाणे रे।
मालड़ियों नो मर मर मेला वरेहे, हुरमा सौंवाणे रे।
हांके तरु वारा नी वीजली भवके, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे वन्दूके वे सुटी, हुरमा सौंवाणे रे।
राजा जालम हींग जी, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे राजा गोली लागी, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे आंगली गोली लागी, हुरमा सौंवाणे रे।
हांके ने राजा पसनाय रे, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे कोरा कागद लखे, हुरमा सौंवाणे रे।
हां वले ईडरे महाराजा, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे त्यांतो कागद मोकलो, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे भारी उमराव वाजे, हुरमा सौंवाणे रे।
के जुसी हे वांमणियुं, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे वामुण धामा दोड़े, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे ईडरे जाई लागो, हुरमा सौंवाणे रे।

ओवे राजा मेलां वेठो, हुरमा सौवाणे रे।
ओवे वांसणियु जाई लागुँ, हुरमा सौंवाणे रे।
हांक खोले कागद नाखे, हुरमा सौवाणे रे।
हांके कागद वांसी जाये, हुरमा सौवाणे रे।
वले वड़ वड कागद वोले, हुरमा सौवाणे रे।
हां के मौने मुड़ेटी, हुरमा सौंवाणे रे।
वीत्या ने कजीओ लागो, हुरमा सौंवाणे रे।
ओवे वाप वेटा नो कजीओ, हुरमा सौवाणे रे।
ओवे वांदो काडी आलो, हुरमा सौंवाणे रे।

(Adopted from 'Rudiments of Bhil Language)

भावार्थः—

इस गीत मे मौ और मुवेटी, वाप और वेटे के वीच लड़ाई का वर्णन लिया गया है। गीत हुरमा चौहान को सम्बोधन करके कहा गया है। यह युद्ध मौ और मुडेटी दोनो देशों के राजाओं के मध्य हुआ जो वाप और वेटे होते है। लडाई मौ और मुड़ेटी के वीच सरहद के लिये हुई थी उस समय ईडर के महाराजा हम्मीर-सिहजी राज करते थे। इस वाप और वेटे की लड़ाई को सिवाय महाराजा हम्मीरसिंहजी के कौन मिटा सकता था। ईडर के महाराजा का कहना कुँवर ने नहीं माना और वह राजद्रोही होकर पहाड़ों में निकल भागा, जहाँ पर फारकी भील थे। अस्तवल मे घोड़ा वॉध दिया और पॉच छः महिने वही विताये। फिर वदला

लेने की इच्छा से ढाल और तलवार लेकर चला और सईस को मजबूत जीन कसने के लिये हुक्म दिया। घोड़े पर चढ़ कर युद्ध करने वास्ते कुँवर मुडेटी पहुँचा। महलों के झरोखे मे इनके पिता जालमसिंहजी युद्ध करने को तैयार बैठे थे। दोनों के बीच मे भारी लड़ाई हुई जिसमे बन्दुकों की जोर शोर से आवाज हुई। तीरों की झरमर झरमर वर्षा होने लगी। राजा जालमसिंहजी ने बन्दूक छोडी जो कुँवर के अगुली पर लगी। राजा ने यह देखकर बड़ा पश्चाताप किया और बहुत घबराया और ब्राह्मण के साथ ईडर महाराज के पास कागज भेजा। ब्राह्मण ने फोरन ईडर महाराज के पास पहुँच कर उनकी गोद मे वह कागज रखा। खोल कर पढ़ा तो उसमे लिखा था कि मौ और मुडेटी, बाप और बेटे के बीच मे भारी झगड़ा हो गया है जिसका निपटारा करो।

कहावतें—

भीलों की कहावतें सच्ची और उपयोगी तत्वों से भरी हुई हैं। सासारिक व्यवहार की दृष्टि से भी कहावते यथार्थ जान पड़ती है। कुछ कहावते उदाहरण के नीचे उद्धृत की जाती है।

(१) आज करवानु काल ने माथे न राखवुँ (आजका काम कल पर न रखना चाहिये)।

(२) आप भलो तो जग भला (आप भले तो जग भला)।

(३) उपाड़्यु कुतरु ने हु आयड़ो का करे (पालनू कुत्ते को कौन मारे)।

(४) ओखद गलस्यु न उगे (औषधि कभी मीठी नहीं लगती अर्थात् झिड़की कभी अच्छी नहीं लगती)।

(५) काम कले हु थाय अतरु जोरे हु न थाय (काम जितना तरकीब से निकलता है उतना ताकत से नहीं निकलता)।

(६) क ाउ सोरो माई वाप ने वालो लागे (कमाउ पूत अपने माँ बाप को प्यारा लगता है)।

(७) खाड़ो खणे ती पडे (जो खड्डा खोदेगा वह आप गिरेगा)।

(८) गागडता ऊँट पलाणवो नहीं, गागड़तो मनख काम करावणो नहीं (चिल्लाते हुए ऊँट को नहीं लादना और बडबड़ाते हुए मनुष्य से काम नहीं कराना)।

(९) गीज्यो वखत पासो आवनो नहीं (गया वक्त फिर हाथ आता नहीं)।

(१०) गुरु करता सेला वदारे (गुरु से चेला बढता है)।

(११) गेर ने सोरां भूखा मरे ने उपाध्यो के मय आटो (घर के छोकरे तो भूखे मरे और ब्राह्मण कहे कि मुझे आटा दो)।

(१२) गेर बाळी ने तीरथ करवा जावुं (घर जला कर तीर्थ जाना अर्थात् अपना काम बिगाड़ कर दूसरे का काम करना)।

(१३) जुग (जुबान) जेरी हे तो मलक वेरी (जबान जहरीली होती है तो सारा मुल्क दुश्मन हो जाता है)।

(१४) टाट जाय पण टेव न जाय (टाट चली जाती है पर आदत नहीं जाती है)।

(१५) नागो नई उतरी ने नसोवे हुँ (नगा नदी मे उतर कर क्या निचोडे)।

(१६) पाणी केज्यु कादल न मले (जहाँ पानी क्रे वहाँ कीचड़ भी नहीं नहीं मिलता)।

(१७) पाप तो घड़ो भराणों नी फूटो (पाप का घड़ा भरा कि फूटा)।

(१८) पारका खेतर मा वीज नहीं वावीये (पराये खेत मे वीज नहीं वोना चाहिये)।

(१९) पारकी एव उगाड़वी नहीं (दूसरे का दोष कभी प्रगट नहीं करना)।

(२०) पारकुँ काम कीधे गाल भराय। (दूसरे का काम करने से प्रसन्नता होती है पेट नहीं भरता)।

(२१) परकुँ रूप देखी दल न ठगावी (पराया रूप देख कर दिल को नहीं ठगना)।

(२२) वायणे नोकलज्यो वार हाथ ने गेर गोड्यो ढोड़ वेत। (वाहर निकलने पर वारह हाथ और घर मे जाने पर डेढ वेंत। वाहर और भीतर मे अन्तर है)

(२३) भहड्यू कुतरु नी काटे, वकज्यो भील नी मारे(भौंकता हुआ कुत्ता नहीं काटता और वोलता हुआ भील नहीं मारता)।

(२४) भील नु वेर उदेई न खाय (भील के वैर को दीमक नहीं लगता अर्थात भील कभी अपना वैर नहीं भूलता)।

(२५) भूत करतां भोपा वदारे)।

(२६) मारे तेनी तलवार ने मेहनत करे तेनी खेड (मारे उसकी तलवार और मेहनत करे उसका खेत)।

(२७) मुहला मूढा नु काम नहीं सदरे (मुर्दा दिल से काम नहीं सुधरता) ।

(२८) वमन आलता मोरे हो वमार करवो (वचन के पहले विचार कर लेना चाहिये)।

(२६) वाड़ वगर वीलो नही सड़े (वाड़ विना वेलड़ी नहीं चढती अर्थात् विना सहारे कोई काम नहीं होता)।

(३०) हरकत तेवी वरकत (जैसा कष्ट वैसा सुख)।

(३१) हॉप लॉबो ने घो पोली (सॉप लवा और घो पोली)।

(३२) हुसे हरखे रे नु काम सदरे (हर्ष और उल्लास से जो काम करता है उसका काम सुधरता है)।

(३३) भील भाई ने ज्ञान नी अने दातरड़ा है म्यान नी (भील को ज्ञान नहीं और दातुली के म्यान नही)।

(३४) जे गत हउलो ते गत वहु नी (जैसी दशा सासू की होती है वैसी दशा वहू की होती है)।

(३५) भीलॉ भोरा अने सेठा मोटा (भीलों के भोले होने से सेठ मालदार हुए)।

नोट.— 'गुजराती' मे भीली लोक-गीतों पर श्री पा० गो० वणिकर और प्रोफेसर ठकार भाई नायक की पुस्तकें प्रकाशित हुई है। श्री फूला जी मीणॉ (साहित्य-शोध-संस्थान, उदयपुर के भूत-पूर्व कार्य कर्त्ता) ने भीलों की भाषा (भीली) के दो हजार से उपर लोक-गीतों का संग्रह किया है।

११—विविध—

भीली भाषा :—

भीली भाषा पश्चिमी राजस्थानी और गुजराती से मिलती-जुलती है। अधिकतर वर्तमान गुजराती का अपभ्रंश ही भीली भाषा मे मिलता है। द्राविड़, गोन्डी, संथाली, कोली इत्यादि भाषाओ से भीली भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमे ८४ प्रतिशत संस्कृत, १० प्रतिशत अरबी तथा फारसी शब्द है और शेष ६ फी सदी का कुछ पता नही चलता। यदि इसकी गुजराती भाषा से तुलना की जाय तो यह मालूम होगा कि कुछ गुजराती अक्षर कम कर दिये गये है, कुछ छोड़ दिये गये है और कुछ का उच्चारण बदल दिया गया है। भीली भाषापर रेवेरेण्ड एच एस. टॉमसन ने 'रूडीमेन्ट्स आफ भील लेंग्वेज' (Rudiments of Bhil Language) नाम की अच्छी पुस्तक तय्यार की है। इस पुस्तक मे टॉमसन साहब ने यह शंका उठाई है कि पुराने समय मे गुजरात पर भीलो का आधिपत्य रहने से भीली भाषा से शायद गुजराती निकली हो; किन्तु बाद मे इस धारणा को गलत मानकर भीली भाषा को अलग कोई भाषा नहीं समझा है। गुजरात मे यह कहावत है कि बोली हर बीस मील पर बदल जाती है। यही कहावत भीली भाषा के लिये भी लागू होती है। जिस भील प्रदेश के पास हिन्दी और मराठी बोली जाती है वहाँ पर हिन्दी और मराठी का अपभ्रंश है। मध्य प्रदेश के भीलों की भाषा मे मराठी और हिन्दी दोनो का समावेश है। राजपूताना और अजमेर – मेरवाड़ा के भीलो

प्रदेश में चार तरह की बोली बोली जाती है :— (१) मगरा की बोली, (२) भीलोड़ी, (३) गरासिया और (४) वागड़ी। मेरवाड़ा के दक्षिणी भाग में मगरा की बोली, प्रतापगढ, डूंगरपुर में वागड़ी, अरावली पहाड़ों मे वली (मारवाड़) और सिरोही में गरासिया और भीलोड़ी करीव करीव सब जगह बोली जाती है। भाषा के बदलने पर उच्चारण में भी फर्क पड़ जाता है। मेवाड में राघूगढ-कोटड़ा की तरफ़ 'अ' को 'ए' बोलते हैं जैसे 'हुकम' को 'हेकम', 'भगवान' को 'भैगवान'।

भीली माप और तोल—

भील-पढ़े लिखे न होने से तोल में नहीं समझते, नाप में जल्दी समझते है। तराजू में तोलना इन्होंने नहीं सीखा है। इनके पास लकड़ी के पल्लावे, पायली, माणा होता है जिनसे नाज नापा जाता है। पल्लावा में करीव डेढ पाव, पायली मे करीव डेढ़ सेर और माणे मे करीव छ: सेर नाज तुलता है। शहद और घी नापने के लिये पायरा होता है जो १४ तोला के करीव उतरता है। पायरा से चढ़कर नाप 'करोड़ा' होता है जिसमें करीव १७ तोला घी समा सकता है।

भीलो के लड़ाई झगड़े और युद्ध—

पुराने समय मे भीलों के परस्पर बहुत लड़ाई झगड़े हुआ करते थे। एक पाल ढोल के डके पर दूसरी पाल पर चढ़ आती थी और आज भी पाल का मुखिया गमेती गॉव की सलाह से लड़ाई का

निश्चय करके ढोल बजा देता है या 'फाई रे फाई रे' करके किल्कारी करता है तो सारे पाल के स्त्री और पुरुष इकट्ठे हो जाते हैं। तीर, तलवार, ढाल, बन्दूक इत्यादि अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध के लिये फिर प्रस्थान करते हैं। जब दूसरी पाल वालों को यह खबर मिलती है तो वे भी युद्ध के वास्ते चढ़ाई करने लग जाते हैं। दोनों पालो का एक स्थान पर युद्ध होता है। स्त्रियाँ आगे और पुरुष पीछे रहते हैं। लड़ाई का श्री गणेश एक दूसरे को अप शब्द बोलकर करते हैं। मुठभेड होने पर स्त्रियाँ हट जाती हैं और सबसे आगे ढाल वाले रहते हैं। वे विपक्ष की तरफ से फैंके हुए तीरों को अपनी ढाल से रोकते हैं। ढाल वालों के पीछे पाँच पाँच या दस दस पुरुषों की श्रेणियाँ रहती है जो हाथ मे तीर लिये हुए युद्ध करती हैं। आखिर स्त्रियाँ रहती है जो पुरुषों को युद्ध मे सहायता पहुँचाती हैं। वे रोटियाँ बनाकर देती हैं, नाज न होने पर महुआ रांधकर या जानवर के गोस्त को सेककर खिलाती हैं, तीर एकत्रित करती है, जल और मदिरा पिलाती हैं और घायलों की सेवा-शुश्रूषा भी करती हैं।

पंचायत और बार्डर कोर्ट—

पचायत युद्ध खत्म होने पर नियमानुसार होती है जिसमें पाल का मुखिया 'गमेती' और उससे नीचे दर्जे मे 'भाँजगड़िया' दोनों प्रमुख रहते है। लड़ाई जुर्माना और हर्जाना तय कर समाप्त हो जाती है। शराब और अफीम पीकर के भी झगडे को तोड़ते है। पहले एक राज्य के भीलों के साथ दूसरे राज्य के भीलों के

लड़ाई झगड़े होते थे वे सरहदी अदालतों (Border Courts) से तय होते थे। सरहदी अदालतें जमीन के तनाजे तथा सरहद पर होने वाले फौजदारी मामलों मे हस्तक्षेप करती थीं। आजकल सरहदी अदालतें उठ गई हैं।

भील स्त्रियाँ और उनका शिष्टाचार–

भील स्त्रियाँ वड़ी मजबूत, मेहनती और फुर्तीली होती हैं। वीरता, निर्भीकता और सहनशीलता के गुण सहज में ही मिलते है। थोड़े वर्षो की वात है कि एक भीलनी ने एक वार ऐसा जोर से तीर चलाया कि वह ऊँट का पेट फाड़कर निकल गया। जंगलों और पहाडों में विना किसी भय के आज भी भील स्त्रियाँ लकडी और घास वटोरती है। आपत्ति-काल मे, जब उनका पति चोरी या लूटमार करने पर पकडा जाता है तो वे घबराती नहीं हैं वल्कि वहुत सहन शीलता के साथ घर का कारोवार चलाती हैं। हर समय, चाहे युद्ध मे हो, चाहे नाचकूद में, भीलनी अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है।

भील स्त्रियों का शिष्टाचार भी सराहनीय है। जव वे अपने पिता या भाई वन्धु से मिलती हैं तो कन्धे से कन्धा लगाकर वड़ा स्नेह प्रकट करती है। वडे, वूढ़े और माननीय पुरुषो से 'जुहार' करती है। 'जुहार' करने का यह तरीका है कि अपने शरीर के वस्त्र जो पहिने होती है उनको सिमेट कर दोनो पैरो के वल पर जमीन पर वैठ जाती है. फिर निकाल कर, अपनी साड़ी के पल्ले

को फैला कर झोली के माफिक पकडे हुए, सिर और पैरों के बीच मे छः सात बार नीचे से ऊंचे उठाती और नमाती है ।

भील शिक्षा संस्थाएँ :—

भीलों के बच्चों और बच्चियों के शिक्षास्थल वन और पर्वत है, जहाँ वे निर्भयता और वीरता का पाठ स्वभाव से ही सीख लेते हैं। खेतों पर बालक नकली कमान बनाकर तीर चलाने का अभ्यास करना सीखता है। एक बालक उपला (कण्डा) ऊपर आकाश की तरफ फेंकता है जिसको दूसरा बालक नीचे ज़मीन पर न गिरे उससे पहले बींधने का प्रयत्न करता है। भील अँगूठे का प्रयोग न करके हाथ की दो दूसरी उंगलियों से ही तीर चलाते है। इसका कारण शायद यह है कि भील एकलव्य ने, जो बड़ा धनुर्धारी था, गुरु दक्षिणा मे अँगूठा द्रोणाचार्य को दे दिया था। भील बालक गोड़िया दड़ी (हॉकी की तरह) जैसे परिश्रमी दौड़-धूम के खेल भी खेला करते है। छोटी उम्र मे भी बालक प्रकृति की पाठशाला मे अपनी सारी शिक्षा पाता है।

भीलों मे पढ़े लिखे बहुत ही कम हैं। सन् १९२१ ईस्वी की जनगणना मे बम्बई प्रान्त मे जहाँ हरिजनों (भंगियों) की २८ प्रति सहस्र, ढेडों की ६५ प्रति सहस्र पढ़े लिखों की संख्या थी वहाँ पर भीलों की सिर्फ ४ प्रति सहस्र संख्या पढ़े लिखों की शुमार हुई है। सन् १९२१ ईस्वी के बाद बम्बई प्रान्त के भीलों की शिक्षा में बहुत अन्तर पड़ गया है। सन् १९२२ ईस्वी मे, आदिम जातियों

थे अनन्य सेवक स्वर्गीय अमृतलाल, वी. ठक्कुर ने जिनको 'ठक्कर वापा' के नाम से पुकारते हैं, दाहोद मे भील सेवा मण्डल स्थापित किया था जो भीलों की शिक्षा, कृषि, हूनर, चिकित्सा और धर्म-कार्य में बराबर उद्योग करता जारहा है, इस मण्डल के अन्तर्गत कुछ पाठशालाएँ चल रही हैं। इन पाठशालाओं मे पढकर मेट्रीक, इन्टर और वी. ए. तक भी थोड़े छात्र उपाधि पा चुके हैं। कन्याओं को साधारण पढाई कराई जाती है। जो अधिक पढना चाहती है उनको वनिताश्रम, सूरत भेजने की व्यवस्था की जाती है। पढ़ाई के अतिरिक्त खेती, कताई, वुनाई, वढई का काम, छपाई और सिलाई का काम सीखने के वास्ते हूनर-शालाओं में भील वालक भेजे जाते हैं। कुछ विद्यार्थी पारख टेकनिकल इन्स्टीट्यूट सूरत मे भी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। वम्बई प्रान्त के भीलों मे यही एक संस्था ठोस काम कर रही है जिसका श्रेय 'ठक्कर वापा' और उनके सहकारियों को है जिनमें श्री लक्ष्मीदास, मगलदास, श्रीकान्त भाई है जो आज भारत की पिछड़ी जातियों के कमिश्नर के पद पर है। यह मंडल, शिक्षा के अतिरिक्त, सहकारी समितियाँ भी चला रहा है। जो लाभ होता है वह इस क्षेत्र के भीलों आदि की आर्थिक उन्नति में लगाया जाता है। कुल कार्यशील पूंजी दस लाख के लगभग होना कहा जाता है। मण्डल के प्रवन्ध समिति के कार्य-कर्ता प्राय सब ही भील है। खानदेश मे, पश्चिमी खानदेश भील सेवा मण्डल, नदुरवर और भील सुधार समिति, धुलिया तथा मालवा मे भील सेवा संघ, इन्दौर और राजस्थान मे भील सेवक संघ

वामनिया (इन्दौर), भीलों की शिक्षा और समाजोन्नति मे संलग्न है ।

राजस्थान मे, 'राजस्थान सेवा सॅघ, डूॅगरपुर' जो कि सेवा सॅघ डूंगरपुर और 'वनवासी सेवा संघ, उदयपुर' की सम्मिलित सॅस्था है, अच्छा कार्य कर रही है। सेवासॅघ श्री भोगीलालजी पंड्या और उनके साथी कार्यकर्त्ताओं ने १८ वर्ष पूर्व आरम्भ किया था और सन् १९४२ में श्री बलवन्त सिंह मेहता और श्री माणिक्य-लाल वर्मा की अध्यक्षता मे सॅचालित हुआ था। इस सॅघ के अधीन डूॅगरपुर और उदयपुर मे लड़कों के छात्रावास तथा डूॅगरपुर मे कस्तूरवा कन्याश्रम चल रहे हैं। लगभग ४० प्राइमरी स्कूल हैं। औषधालय, कूप-निर्माण, मद्य-निषेध, पशु-बलि-निषेध और मार्ग-निर्माण आदि चौदह कार्यक्रम पर ध्यान दिया जारहा है। राज-स्थान मे, पिछड़ी हुई जातियों के कल्याण के वास्ते सरकारी विभाग भी है जो भीलों और अन्य पिछड़ी जातियों का उत्थान कर रहा है। बवई प्रात के मुकाबले मे शिक्षा की कमी है किन्तु फिर भी शिक्षा-प्रसार मे सरकारी और गैर-सरकारी सॅस्थाएॅ पूरी प्रयत्नशील हैं। डूॅगरपुर जिले मे सागवाड़ा के भीखा भाई भील बी. ए. एल एल. बी है और लोकसभा के सदस्य भी। आप पिछड़ी जातियों के कमीशन के भी मेम्बर है। राजस्थान मे सबसे प्रथम शिक्षा-सुधार मे भी, पादरियों ने कदम उठाया जिनमे डा० शेफर्ड का नाम सर्वोपरि आता है। इन्होंने सिर्फ मीशनरी स्कूल ही क़ायम नहीं किये बल्कि भीलों के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित कर,

उनकी सामाजिक दशा को भी सुधारा। बाँसवाड़ा जिला सेवा सँघ, परतापुर भी, भीलों की शिक्षा व सुधार में १६४६ से कार्य कर रहा है। सब आदिम जातियों की प्रमुख सँस्था, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, देहली है, जिसका उद्देश्य आदिम जातियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक उन्नति करने का है, जिसके सभापति डा० राजेन्द्रप्रसाद, हमारे राष्ट्रपति हैं।

भारत के भीलों तथा आदिम जातियों के प्रमुख कार्यकर्ताओं में, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद (सन् १६४५ में राँची मे आदिम जाति सेवा मण्डल स्थापित किया), श्री बी० जी० खेर, श्रीरुपाजी भावजी भाई परमार, श्री बलवन्तसिंह मेहता, श्री भोगीलाल पड्या, श्री मूलदेव विश्वनाथ त्रिवेदी, श्री लक्ष्मीदास मंगलदास, श्री कान्त, श्री दयाभाई नायक, श्री बालेश्वर दयालु, श्री मोतीलाल तेजावत, पांडरंग गोविन्द वणिकर आदि हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कार्यकर्त्ता हैं किन्तु स्थानाभाव से सबके नाम देना सम्भव नहीं है और न अभीष्ट है। इस जाति तथा अन्य आदिम जातियों के उत्थान में, सच्चे और कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की पूरी आवश्यकता है।
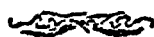
सहायक साहित्य

अँग्रेजी

1. The Gazeteer of Rajputana.
2. The Gazetteer of Mewar.
3 Sherring's Hindu Tribes and Castes.
4. Malcolm's Memories of Central India
5. Thompsons Rudiments of the Bhil Language.
6 Shepherd of Udaipur.
7 The Beghas-Elwin Verrier.
8. A Memory of the Khandesh Bhil Corps
A H A Sincoxe I. C S
9. Encyclopaedia Britainica
10. Imperial Gazetteer of Central India.

हिन्दी

११ भीलों ना लग्न

१२ राजस्थान के भील-प्रो० रामेश्वर ओझा
('त्याग भूमि' पत्रिका से संकलित)

१३. हमारी आदिम जातियाँ-भगवानदास केला और अखिल विनय

१४. डूँगरपुर-एक सिंहावलोकन-शिवलाल कोटडिया

१५. विविध रिपोर्टस और पत्र-पत्रिकाएँ—भील सेवा मंडल दाहोद, सेवा संघ डूँगरपुर, राजस्थान सेवा संघ, डूँगरपुर, 'आदिवासी' मोडर्न रिव्यू (फरवरी सन् १९२७) मनोरमा (सख्या ६ भाग १) अर्जुन (१५ अप्रेल सन् १९३५ साप्ताहिक) तथा अन्य रिपोर्ट्स, पत्र व पत्रिकाएँ।